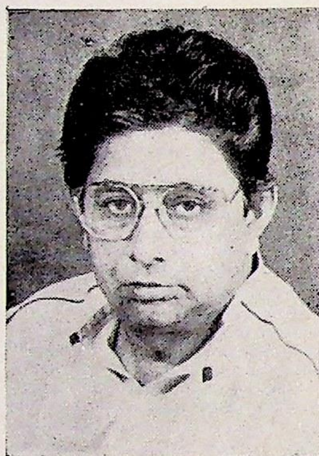


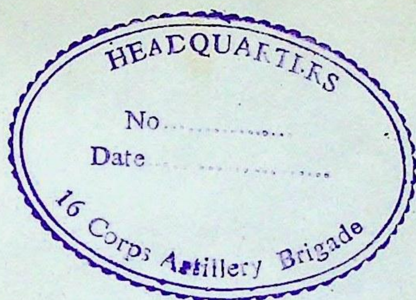
अश्वी

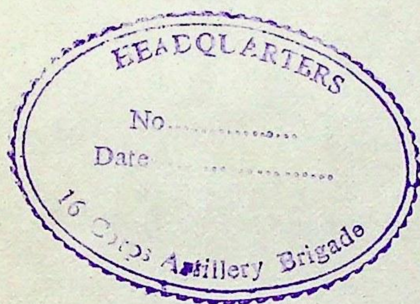
श्रीकांत वर्मा



श्रीकांत वर्मा की कहानियाँ बहुत ही तथ्यात्मक·· छोटे-छोटे वाक्यों में समाप्त होने वाला गद्य···और बड़ी निर्ममता से किसी समाज की अमानवीयता को उद्घाटित करने वाली हैं। इस समाज में बढ़ती हुई आपसी संबंधों की और परिस्थितियों की जो अमानवीयता है, अमानुषिकता है, उसकी क्रूरता है, उसको बड़ी निर्ममता से श्रीकांत ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

—डॉ० नामवर सिंह


HEADQUARTERS
No..................
Date....................
16 Corps Artillery Brigade



अरथी



किताब घर
गांधी नगर दिल्ली-110031

अरथी

श्रीकांत वर्मा

प्रकाशक
किताब घर
मेन बाजार, गांधी नगर दिल्ली-110031

प्रथम संस्करण
1986

मूल्य
पच्चीस रुपये

मुद्रक
डिम्पल प्रिंटर्स
गांधी नगर दिल्ली-110031

ARTHI
by ShriKant Verma

(Hindi Stories)
Price : Rs. 25/-

हरिशंकर परसाई

के

लिए

क्रम

अरथी

जिस आदमी से मैं जीवन-भर, मन-ही-मन घृणा करता रहा, जिसकी मृत्यु की अभिलाषा मैं कब से संजोये हुए था, आज उसकी अरथी में मैं दुःख-कातर चला जा रहा हूं।

सवेरे उठकर बैठा ही था कि पड़ोसी ने आकर बताया, "मदनलाल नहीं रहा।"

"एं ?" मैंने कहा।

"हां।" उसने कहा, "कल रात उसे दिल का दौरा पड़ा और वह चल बसा। मैं उधर ही जा रहा हूं।" यह कहकर वह चलता बना।

मैं पिछली शाम ही मदनलाल से मिला था। उसने हमेशा की तरह मुझ पर रौब गांठने की कोशिश की। मैं भी ऐंठा। मैंने उसे इस तरह देखा जिससे वह समझ जाय कि उसकी अकड़ मुझ पर कारगर नहीं होगी। तब उसने मुझे आंखें निकालकर देखा। एक बार तो मैं डर गया। मुझे लगा वह मुझे निगल जाएगा और मैं उधर से आगे बढ़ गया।

कमज़ोर मैं ही पड़ता था—यह हमारा-उसका पिछले अट्ठाईस वर्षों का रिश्ता था। सब-कुछ बदल गया, मगर इसमें कोई फर्क नहीं पड़ा। मैंने कभी उसकी आंखों में करुणा नहीं देखी—कम-से-कम अपने लिए। मैं उसे जितना आततायी समझता था, वह मुझे उतना ही टुच्चा मानता रहा।

लेकिन हम दोनों खानदानी थे। अपनी अन्दरूनी बात को हमने कभी मशहूर नहीं किया। बातूनी और डरपोक होने के कारण मैंने अपनी पत्नी को ज़रूर बता दिया था। मगर उसे छोड़, तीसरा कोई इस राज को नहीं जानता था। कुछ तो मुझे डर भी था कि अगर यह बात मेरे मुंह से कहीं निकल गई तो फिर वह भी कोई कसर नहीं रखेगा। वह तगड़ा और जानदार था, साथ ही गुस्सैल भी। वैसे भी सड़क पर पिटने के खयाल से मुझे दहशत होती थी।

जो भी हो, यह तय है कि मैंने उसको कभी पसन्द नहीं किया। अब केवल इसलिए कि वह मर गया है, मैं यह नहीं कहूंगा कि मेरे मन में उसके लिए स्नेह था। जैसा मैंने कहा, मैं एक अरसे से उसकी मृत्यु की अभिलाषा संजोये हुए था।

मगर जब पड़ोसी ने यह बताया कि वह नहीं रहा तो मुझे लगा किसी ने मेरी खिड़की का शीशा अचानक एक झपाटे में तोड़ दिया और पंख फैलाकर उड़ गया।

इसीलिए मेरे मुंह से निकला, "एं ?" और मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा।

मेरी पत्नी आंगन में बैठी बासन मांज रही थी। उसने वहीं बैठे-बैठे, सिर झुकाए हुए कहा, "हो आओ।"

यह कहने की ज़रूरत क्या थी ? मैं तो हो ही आता। मैंने चिड़चिड़ी निगाह से पत्नी को देखा, जो पूर्ववत् बरतन मलने में व्यस्त थी।

मदनलाल का घर, मेरे घर से करीब चार फर्लांग था। मैं नंगे पांव निकल पड़ा था। और भी कुछ लोगों को नंगे पांव चलते देख, मैंने अन्दाज़ा लगाया वे भी उधर ही जा रहे हैं। दो-एक को मैं जानता भी था।

"बुरा हुआ।" उनमें से एक ने कहा।

"बहुत।" दूसरे ने कहा।

मैं उनके पीछे-पीछे आ गया। धूप निकल आई थी। सुग्गे पेड़ों की ओट से निकल-निकलकर तीर की तरह छूट रहे थे। उनमें से एक ने, जिसके बदन पर धोती को छोड़ कुछ नहीं था और जो देर से दातौन किए जा रहा था, कहा, "आना-जाना तो लगा ही रहता है।" उसके पैरों में खड़ाऊं भी थी।

"सो तो है। मगर यह बुरा हुआ।" पहले वाले ने कहा।

दातौन वाला निर्विकार दातौन करता रहा। मैं चाल बढ़ाकर उनके साथ हो लिया था। एक बार उड़ती हुई दृष्टि से उन्होंने मुझे देखा, फिर अपनी बातचीत में मशगूल हो गए।

"कै बजे गए ?" खड़ाऊं वाले ने दातौन हिलाते हुए पूछा।

"ठीक सवेरे तीन बजे नहीं रहे।"

"कल तक तो भले-चंगे थे।"

"यही तो मैं भी कह रहा हूं।" मेरे मुंह से निकला। मैं उनके बिलकुल साथ हो गया था। उन्होंने उपेक्षाभरी दृष्टि से मुझे देखा और चुप हो गए।

घर के सामने थोडे-से लोग इकट्ठा थे।

"अभी भीड़ नहीं हुई है।" मेरे साथ वाले ने कहा।

"हो जाएगी।" दूसरे ने विश्वास के साथ कहा।

घर के बाहर एक चबूतरा था, जिस पर दो-तीन नौजवान बांस की खपचियों से अरथी बना रहे थे। एक के कंधे पर गमछा था, बाकी ने धोती को ही इस तरह लपेट लिया था कि उससे कंधे ढंके नज़र आते थे।

मैं ज़रा दूर हटकर खड़ा हो गया। मुझे लगा मैं बिना बुलाए ही आ गया हूं। तो क्या हुआ ? कोई दावत थोड़े ही है। क्रिया-कर्म में सबको शामिल होना चाहिए। आदमी आदमी के मरने पर नहीं जाएगा तो उसकी मिट्टी पर कौन आएगा ?

अभी मैं अपने से ये बातें कर ही रहा था कि घर में से एक तीस-पैंतीस का एक नौजवान निकला। उसने किसी को सम्बोधित करते हुए कहा, "लकड़ी के लिए कह दिया है ?"

"तुम फिकर मत करो। लकड़ी पहुंच गई है।" चबूतरे पर बैठे अरथी के काम में लगे लड़कों में से एक ने कहा।

"यह कौन है ?" मेरे बगल में खड़े एक बूढ़े ने दूसरे बूढ़े से सवाल किया, "बड़ा लड़का है ?"

"नहीं। यह भतीजा है। बड़ा लड़का बम्बई रहता है। कल के पहले कैसे आ सकता है ?"

"कपाल-क्रिया कौन करेगा ?" बूढ़े ने अपना कपाल खुजलाते हुए कहा।

"छोटा।" दूसरे ने कहा और ज़मीन पर पिच्च से थूक दिया।

मैं उन दोनों की बातचीत ध्यान से सुनने लगा था। मुझे नहीं मालूम था कि मदनलाल के बड़े लड़के ने, इस बीच, अपना कारोबार बाहर कर लिया है। मैं समझता था वह बाज़ार देखता है। साल-भर पहले मदनलाल ने सेक्रेटरी को घूस खिलाकर म्युनिसिपैलिटी से भैंसा-बाज़ार का ठेका ले लिया था। मुझे जब यह खबर मिली थी, तब मैंने, माथुरिया पण्डित से, जो सड़क पर बैठकर, कान में जनेऊ चढ़ा, पेशाब कर रहा था, कहा था, "हराम की कमाई नहीं फलती। कुत्तों की मौत मरेगा।"

माथुरिया पंडित ने, जो सेर-भर पेशाब करता है और इतना ही हगता है, सड़क के किनारे की दीवार पर हाथ टेककर सहारा ले, उठते हुए कहा, "कोई नहीं मरता कुत्ते की मौत—पैसा हो तो जस भी होता है। तुम्हारे पास है पैसा ?"

"माल कितना छोड़ा है ?" कमर पर हाथ रख बुड्ढा पूछ रहा था।

"मुझे पता है।" मेरी इच्छा हुई कहूं, "मैं भी तो बुड्ढा हो गया हूं। पचपन की उमर हो आई। मुझसे पूछो मदनलाल के बारे में। मुझे सब पता है।" मेरा गुस्सा, जो हमेशा मदनलाल को देखकर उमड़ता था, इन दोनों बुड्ढों की बातचीत सुनकर फनफनाने लगा।

धूप बरामदे पर चढ़ने लगी थी, जहां बहुत-सी स्त्रियां घूंघट काढ़े, सिर झुकाए बैठी हुई थीं। वे बड़ी देर से चुप थीं। शायद बड़े सवेरे रो चुकी थीं। हो सकता है रात-भर रोती रही हों।

बेचारियां ! मेरा मन आर्द्र होने लगा। इनमें मदनलाल की बेवा कौन-सी है ? मैं उसे पहचानता था। घूंघट के बावजूद मैं उसे दूर से ही चीन्ह सकता था। उसका शरीर भरकम था और वह हांफ-हांफकर चलती थी। मुझे खयाल आया वह भीतर मदनलाल के शव पर होगी। चूड़ियां फोड़ दी गई होंगी और सिंदूर ? बेचारी ! मेरा मन और भी आर्द्र हो उठा।

शव कब बाहर लाया जाएगा ? मैं उत्सुक हो उठा था। इस वक्त

तक भीड़ इकट्ठी हो चली थी। अमीर-उमरा, सभी तरह के लोग थे। मगर ऐसों की तादाद ज़्यादा थी, जिन पर कभी-न-कभी मदनलाल का कर्ज़ रह चुका था।

"दानी था, महात्मा था।" जो कुछ बातचीत हो रही थी उसका सार यही था : "मदनलाल ने किसी का बुरा नहीं चाहा। इसको भी दिया, उसको भी दिया। सबसे उसका खाना-पीना था।"

"आप लोग एक ओर हो जाइये।" अचानक कहीं से एक स्वयंसेवक प्रकट हो गया था। यह सबको एक ओर हटा रहा था। जनता काफी थी। ऐं ? डेढ़ सौ से कम क्या होगी ? थोड़ी देर में एक जीप आकर रुकी, तब समझ में आया, किसके लिए रास्ता बनाया जा रहा था।

जीप की अगली सीट से म्युनिसिपल कमेटी का चेयरमैन मेसर्स सुखदेव-प्रसाद नीचे उतरता नजर आया। उसके पीछे उसका सहायक और तीन-चार और लोग थे। सहायक के हाथों में फूल-मालाएं थीं। जब वह आगे घर की ओर बढ़े तो बाकी भीड़ भी अनुयायी की तरह उस ओर चली।

"आप लोग यहीं रुकें। चेयरमैन साहब अकेले जाएंगे।" सुखदेवप्रसाद बरामदा पार कर, औरतों और बच्चों पर उछलती नज़र डाल, भीतर कमरे में चला गया, जहां मदनलाल का शव रखा हुआ था।

सुखदेवप्रसाद मेरा क्लासफैलो था। मैं हर चुनाव में उसके खिलाफ वोट देता हूं, बल्कि भरसक प्रयत्न करता हूं कि चाहे जो हो, वह चुनकर न आए। महा रंडीबाज, महा घमंडी, महा कायर। मगर इस बार वह चुनकर आ ही गया। मेरा कोई अखाड़ा तो है नहीं जहां उसे चित कर दूं। दस-बीस लोगों से जान-पहचान है। उन्हीं के बीच अपनी राजनीति चलती है।

सुखदेवप्रसाद, मदनलाल के छोटे लड़के के कंधे पर हाथ रखे हुए बाहर निकल रहा था। उसने होंठों-ही-होंठों में उससे न जाने क्या कहा कि लड़का 'चाचाजी' चिल्लाकर उसके कंधे पर सिर रख धाड़ मारकर रो पड़ा। सुखदेवप्रसाद ने रूमाल से अपनी नाक पोंछने का नाटक किया, फिर लड़के की पीठ पर हाथ फेरता रहा।

पाखंडी ! पातकी ! लुगाईबाज़ ! मैंने मन-ही-मन उसे गालियां दीं।

इससे तो अच्छा मैं हूं। ढोंग तो नहीं करता। पैसे के बल पर बना फिरता है।

जब वह जीप की तरफ चला तो लोगों ने उसे घेर लिया, जैसे उसके पास मदनलाल के बारे में, उसकी मृत्यु के विषय में, कोई नई खबर हो। मैं दीवार की ओर मुंह कर खड़ा हो गया। कहीं उसकी नज़र मुझ पर न पड़ जाए।

"मिट्टी कितने बजे होगी ?" भीड़ में कोई कह रहा था।

"ग्यारह बजे।" उसे जवाब मिल गया।

"नौ तो बज ही गए।" वह आदमी अपनी घड़ी देख रहा था। उसे शायद जल्दी थी। कितने छोटे हैं ये लोग ! मैं सोच रहा था, आदमी की मौत पर भी इन्हें जल्दी है। मुझे कोई जल्दी नहीं। मैं मन-ही-मन भिनभिनाया और उनसे बड़ा हो गया।

"आइए। आप लोग आइए। एक-एक कर आइए।" एक गठे शरीर वाला आदमी सबको पुकारता हुआ कह रहा था, "जूते उतार दीजिए। अन्दर ज़्यादा देर न रुकें।" वह मदनलाल का फुफेरा भाई था। मदनलाल की उससे कभी नहीं पटी। दोनों में एक औरत को लेकर झगड़ा था। दोनों बारी-बारी से उसके पास जाते थे और बरसों तक दोनों को पता नहीं चला कि वह औरत दोनों को उल्लू बना रही है। जब पता चला तो दोनों में ठन गई, बातचीत बन्द हो गई। बाद में वह औरत शहर छोड़ भाग गई। सुनता हूं, गिनोरिया से मरी। मदनलाल को भी गिनोरिया था। इलाज पर बहुत पैसा खर्च किया था। आखिर में चांईबासा वाले बाबा ने ठीक किया था। मुझसे पूछो न। मुझको सब पता है—एक-एक की जानता हूं।

मदनलाल के मकान के सामने एक लम्बी 'क्यू' लग गई थी। लोग एक-एक कर भीतर जा रहे थे। बरामदे में औरतों और जूतों का अम्बार लगा हुआ था। बरामदे से लगा हुआ ही कमरा था, जिसमें एक तख्त पर उसका शव रखा हुआ था।

तो मैं क्या करूं ? क्या मैं भी कतार में लग जाऊं ? अन्दर जाना ठीक होगा ? हां-हां, क्यों नहीं ? किसी ने रोक दिया तो ? कोई नहीं रोकेगा। चलो अन्दर।

मैं लाइन में लग गया। लोग उसी दरवाज़े से अन्दर जाते थे और उसी से बाहर निकल आते थे। दरवाज़ा संकरा था। मगर कोई बात नहीं। लोगों में शिस्त है। देखो न, कैसे नियम से आ-जा रहे हैं, जैसे चीटियां।

औरतों का रोना शुरू हो गया था। जैसे ही यह आर्त्तनाद मेरे कान में पड़ा, मेरी आंखें डबडबाने लगीं। देखो तो कितने लोग उसके लिए रो रहे हैं।

मगर मेरी आंखों में आंसू क्यों? क्या मैं मदनलाल की मृत्यु पर रो रहा हूं? क्या मेरा मन अपने बैरी के लिए पसीज चला है? नहीं, कतई नहीं। मरने से आदमी बदल नहीं जाता, मदनलाल ऐसा आदमी था ही नहीं, जिससे प्रेम हो। फिर मैं रो क्यों रहा हूं?

औरतें एक बार और धाड़ मारकर रोईं। उनकी चीखें कलेजे को पार कर गईं। बहुत-से मर्द भी रो रहे हैं। गुमसुम, चुपचाप। उनकी आंखों में आंसू देखकर मेरी आंखें और भी डबडबा आईं। माफ करना भैया, मैं अपने को रोक नहीं पाऊंगा। मैं बहुत कच्चे दिल का हूं।

मेरी बारी आ गई थी। मैं दरवाज़े के बिलकुल करीब पहुंच गया था। क्या करूं? लौट चलूं? उन लोगों ने पहचान लिया तो? कहीं का नहीं रहूंगा। तो क्या फैसला किया?

पीछे से ज़रा-सा धक्का पड़ा और मैं कमरे के अन्दर था।

"हाय बप्पा!" जैसे ही मैं अन्दर घुसा, चीख मेरे कानों में पड़ी। मदनलाल का लड़का तख्त पर सिर पटक रहा था। दो दबंग आदमी उसे सम्हाले हुए थे। मदनलाल की पत्नी के आंसू सूख गये थे। वह वहीं, पति के शव के पायताने, तख्त पर कुहनी टेके, बैठी हुई थी— विस्फारित नेत्रों से लाश को देख रही थी।

एक बार उसकी दृष्टि टकराई। मैं सहमा। उसने मुझे पहचान तो नहीं लिया? मगर वह किसी और संसार में थी। मैं उसे 'मदालसा' कहा करता था। अपने दुश्मन की पत्नी का मखौल उड़ाने में अनोखा सन्तोष मिलता है।

मदनलाल का चेहरा विकृत लग रहा था। मृत्यु के पहले वह अवश्य कातर हुआ होगा। अपने सामने खड़ी मौत से उसने ज़रूर भिक्षा मांगी

होगी, पैरों पर गिरा होगा, बिलबिलाया होगा। और अन्त में, मौत को अटल देख, विदा लेने के लिए, संसार की ओर मुड़ा होगा—उसी वक्त मौत ने उसकी पीठ पर छुरा भोंक दिया होगा। और वह दो शब्द भी नहीं बोल पाया, अटपटाकर रह गया। उसके मुख पर यही अटपटापन था।

हे ईश्वर !

हे रामचन्द्र !

हे कृष्णजी !

हे बजरंगबली !

प्राणी को ऐसे मत मारो।

अब से किसी की मौत पर नहीं आऊंगा। मुझसे नहीं देखा जाता।

"खड़े क्या हैं। आगे बढ़िये।" मेरे पीछे का आदमी मुझे धकियाता हुआ बोला। मैं आगे बढ़ता हुआ शव की लगभग परिक्रमा कर गया। कमरा छोटा और घुटा हुआ था। रोशनी के लिए लट्टू जला दिया गया था। सिरहाने लोबान की गन्ध उड़ रही थी। शव को चादर उढ़ा दी गई थी—केवल मुख खुला हुआ था ताकि लोग देख सकें। कमरे में दबी हुई सिसकियां सुनाई पड़ती थीं।

बाहर आकर मैं फिर उसी जगह खड़ा हो गया था जहां थोड़ी देर पहले उधेड़बुन में था। बड़ा दर्दनाक दृश्य था। आदमी कैसे अपनी मौत को झेलता है। हे प्रभु ! हे दीनानाथ !

लोगों का तांता समाप्त हो चुका और अरथी बनकर तैयार थी। चार आदमी उसे उठाकर घर के भीतर ले जा रहे थे। तो अब अरथी पर लिटाया जाएगा। बरामदे में हलचल हुई और कमरे में क्रन्दन हुआ। मैं समझ गया, मदनलाल का शव तख्त से उतारकर अरथी पर रखा जा रहा है। मेरे दिल की धुकधुकी फिर बढ़ने लगी। और आखिर में अरथी बाहर आ ही गई। रोना-धोना कुछ भी काम नहीं आया।

मदनलाल की बेवा बिलकुल पागल हो गई थी। वह अरथी का रास्ता रोक रही थी। और लड़का ? लड़के को आधा दर्जन लोग संभाले हुए। भगवान् किसी को ऐसा दिन न दिखलाये।

अब अरथी में और भी लोग जुट गये थे। मदनलाल का शव फूल-

मालाओं से ढक गया। बाहर आकर अरथी क्षण-भर को रुकी, फिर उत्तर की ओर मुंह कर चल पड़ी। श्मशान उसी ओर था—दूर है, कम-से-कम तीन मील है। पहुंचते-पहुंचते बारह बज जाएंगे।

जैसे ही अरथी रवाना हुई, घर की स्त्रियों ने इकट्ठे रोना शुरू किया और मदनलाल की विधवा पछाड़ खा-खाकर गिरने लगी।

चलो, चलो, आगे चलो। अब यहां और रुकना ठीक नहीं। अरथी चल पड़ी थी। सबके साथ-साथ मैं भी चल पड़ा था। अच्छा ही किया जो नंगे पांव आया। ज़्यादातर लोग नंगे पांव आये हैं। बाबू लोगों की बात और है। मगर हैं कितने बाबू!

कुछ भंगी और शोहदे भी शामिल हो गये थे—पैसे के लोभ से। अरथी के आगे-आगे पैसे लुटाये जा रहे थे, जिन्हें वे दौड़-दौड़कर चुनते। भीड़ के पैरों कुचले बिना, पैसे चुनना भी कारीगरी है—वह भी ऐसी फुर्ती के साथ।

अभी हम सौ गज़ ही गये थे कि कलरव हुआ। शायद जय-जयकार हो रही है। किसी के बिछुड़ने पर जब जय-जयकार होती है, कीर्तिगान होता है तो मेरी आंखों से अविरल अश्रु बहने लगते हैं—चाहे वह कोई हो। पता नहीं क्यों?

मैं जल्दी-जल्दी चल नहीं पाता और वे लोग तेज़-तेज़ चल रहे थे—भागे जा रहे थे। मैं पीछे न रह जाऊं। मैंने भी अपनी चाल तेज़ की। अचानक मुझे सुनाई पड़ा, 'मदनलाल···।' और मेरे मुंह से भरपूर कंठ निकला, 'अमर है।' सब लोगों ने मुड़कर हैरत से मुझे देखा। ओह! मुझसे गलती हो गई। मदनलाल का नाम शायद नहीं लिया गया था।

अब उस खड़ाऊं वाले ने, जो भीड़ में था, अपनी चाल धीमी कर दी ताकि मैं उसके साथ हो लूं। जब मैं उसके बिलकुल साथ हो गया, तब उसने मुझे घूरकर देखा। उसके चेहरे पर तेज था। वह अपना शरीर बनाये हुए था।

"कौन अमर है?" उसने गुस्से में भरकर कहा, "जो आएगा सो जाएगा। तुम क्या समझते हो, अमृत पीकर आये हो?"

वह मुझको जिस तरह खटखटा रहा था, उससे लगता था, वह जानना

चाहता था कि क्या मैं यह मानता हूं कि मैं कभी नहीं मरूंगा।

मरूंगा। ज़रूर मरूंगा। नहीं मरूंगा। मेरे कंठ में बलगम आकर फंस गया था।

उसने एक बार फिर मुझको घूरा और शायद इस नतीजे पर पहुंचकर कि यह एक सिरफिरा है, आगे बढ़ गया। जुलूस काफी दूर निकल गया था। मैं भागने लगा और हांफने लगा। क्या मैं पीछे छूट जाऊंगा?

भीड़ को चीरता हुआ मैं एकदम आगे, अरथी के करीब निकल आया था।

"राम ना···।"

"सत्त है।"

"राम नाम।"

"सत्त है।"

"सबकी यही।"

"गत्त है।"

सबकी यही गति है। ठीक ही कहता है खड़ाऊं वाला। सबको इसी तरह चार कन्धों पर चढ़कर जाना है। मुझको भी।

मुझको भी दो भाई। मुझको भी। मैं अपने-आप बुदबुदाया, किसी ने सुना या नहीं, मुझे पता नहीं, और उचककर अरथी का एक सिरा अपने कन्धे ले लिया। अरथी मुझे ढकेलने लगी, आगे, सिर्फ आगे।

मैं छोटे कद का आदमी हूं (मेरे नाटे कद को लेकर मदनलाल मुझ पर फिकरे कसा करता था)। अपन कद के कारण मुझसे लम्बे-लम्बे डग नहीं भरे जाते। अक्सर पिछड़ जाता हूं। मगर इस समय अरथी मुझे धक्का लगा रही थी। चलो बेटा, चलो।

मेरा कद गड़बड़ियां कर रहा था। अरथी का सन्तुलन बिगड़ रहा था। अरथी, जिसको हमारी बोली में 'उलार' होना कहते हैं, उलार हो रही थी। वज़न से मेरे कन्धे भी दुख रहे थे। मरे हुए आदमी का इतना बोझ होता है। मदनलाल आदमी भी तो खाया-पिया था।

अरथी के सन्तुलन को बनाये रखने के लिए मैंने पंजों के बल चलना शुरू कर दिया। मगर इससे भी काम नहीं बन रहा था। आखिर मेरे साथ-

साथ चल रहे एक आदमी ने आकर मुझे हटा दिया और अपना कन्धा लगा दिया।

"हां, अब तुम ले लो।" मैंने हांफते हुए कहा।

मैं फिर भीड़ में पीछे रह गया था। वैसे अब भीड़ भी अधिक नहीं रह गई थी। लोग तितर-बितर होते जा रहे थे। केवल मदनलाल के खास लोग, स्वजन-सम्बन्धी बचे रह गए थे। तब भी काफी लोग हैं। मैंने अचरज किया।

"लड़का किधर है?" मेरे साथ चल रहे दो लोगों में गुफ्तगू शुरू हो गई थी। वे लोग मदनलाल के लड़के को पूछ रहे थे।

"वह क्या है? आगे-आगे गंगाजल लिये।" मेरे मुंह से अचानक निकला, "बुलाऊं उसको?"

"नहीं, रहने दो।" उनमें से एक ने मुझे झिड़का और मुझे इस तरह देखा जैसे मैं उनकी बातचीत में खलल डाल रहा हूं।

मैं संकोची आदमी हूं। हट गया। मगर पीछे-पीछे चलते हुए भी उनकी बातचीत सुनने का लोभ नहीं छोड़ सका।

"यह कौन है?" वे मेरे बारे में जिज्ञासा कर रहे थे।

"होगा कोई। मदनलाल के जानने वाले भी तो तरह-तरह के थे।"

"सो तो है।"

जुलूस फिर आगे निकल गया था। केवल वे दो और उनसे कुछ फासले पर चलता हुआ मैं। हम तीन आदमी पीछे थे। हम इस तरह चल रहे थे जैसे हमें कोई जल्दी नहीं। तुम पहले पहुंचकर करोगे भी क्या?

सहसा उनमें से एक आदमी रुक गया। उसके रुकते ही डरकर मैं भी रुक गया—कहीं वह यह न समझ ले कि मैं उसके नज़दीक पहुंचने की कोशिश कर रहा हूं।

वह सड़क पर खड़ा होकर बड़ी ज़ोर से हवा छोड़ रहा था— अगर आसपास कोई जानवर होता तो ज़रूर चौंककर बगटुट भाग निकलता।

"यही तुममें बुरी बात है।" दूसरा वाला कह रहा था, "जहां जो चाहा वहां छोड़ दिया।" हंसी के मारे उसका हाल बेहाल था। वह अपना सीना पकड़कर हंसे जा रहा था।

उसे हंसता देख मैं भी हंसने लगा। मैंने भी अपना सीना पकड़ लिया।

"बुढ़ापा है, बुढ़ापा।" दूसरे वाले ने स्वस्थ होते हुए कहा। अचानक दोनों मेरी ओर मुड़े। मैं अब तक हंसे जा रहा था। मुझे हंसता देख दोनों की मुखाकृति सिकुड़ी और दोनों घृणा से मुझे देखकर आगे बढ़ गए।

मैं उनके साथ या पीछे या फासले पर नहीं चलूंगा। वैसे भी मुझे जुलूस में होना चाहिए—लोग क्या कहेंगे ?

मैंने अपनी चाल दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी कर दी और बदहवास आदमी की तरह भागता हुआ भीड़ में आ मिला। मेरा दम फूल गया था।

"अब कितना बचा है ?" ज़बान से निकला। चौंककर एक नौजवान-से आदमी ने, जो निश्चय ही नौजवान नहीं था, अपने चोर-बदन के कारण नौजवान लगता था, मुझे देखा, हंसा और बोला, "थक गए ?"

"नहीं, यह बात नहीं।" मैंने बात छिपानी चाही, मगर बात उसकी सच थी। इस तेज़ दौड़ ने मुझे थका दिया था। मगर उसको देखो, उस खड़ाऊं वाले को, कैसी अकड़ से चला जा रहा है। उसकी चाल में थकाव का कोई लक्षण नहीं। देह हो तो ऐसी हो।

"अब आ गए।" वह नौजवाननुमा आदमी मुझको तसल्ली दे रहा था।

"मदनलाल को तुम कब से जानते थे ?" उस आदमी ने मुझसे पूछा। वह यह बात मुझसे क्यों पूछ रहा है ? मैंने सन्देह से उसे देखा। लेकिन वह निश्चित था।

उसकी निश्चितता से निश्चित होकर मैंने जवाब दिया, "बहुत साल से। और तुम ?"

"मैं उसे नहीं जानता था।"

"फिर तुम क्यों आए हो ?" मेरा सवाल बेहूदा था। और इसलिए उसने दोटूक जवाब दिया, "क्यों, आदमी की मौत में शामिल होना गुनाह है क्या ?"

"नहीं-नहीं। गुनाह क्यों होगा।" मेरे मुंह से निकल पड़ा, "मेरे को माफ करना।"

वह हंस पड़ा। फिर उसने मेरे कंधे पर थपकी दी और बोला, "डग बढ़ाओ।"

मैं कितना भी डग बढ़ाऊं, औसत ऊंचाई के आदमी के बराबर नहीं चल सकता—इसे साफ करने के लिए मैंने कहा, "मदनलाल मुझे बौना कहता था।" जब वह मेरे साथ-साथ चलने लगा तब मैंने कहा, "मदन-लाल अच्छा आदमी नहीं था।" वह चुप रहा। तब उसका मन लेने के लिए मैंने कहा, "खैर, जाने दो, अब वह रहा नहीं।"

"क्यों, क्या हुआ ?" उसने तन्द्रा से चौंककर कहा।

"कुछ नहीं।"

"नहीं, तुम कुछ कह रहे थे।"

शह पाकर मैंने कहा, "मदनलाल अच्छा आदमी नहीं था। महा पातकी, महा शैतान।" इसके बाद मैंने चालाकी बरती। कुछ देर की चुप्पी साध ली। जब उसने उत्सुक होकर मुझे देखा, तब मैंने कहा, "मदनलाल के बारे में मुझे एक ऐसी बात मालूम है, जो मेरे सिवाय किसी को नहीं मालूम। बता दूं तो वह कहीं का नहीं रहेगा।" मैं दांत किटकिटा रहा था।

"कौन-सी बात ? कौन-सी बात ?" वह आदमी फुसफुसाता हुआ मेरे नजदीक आ गया था। हो सकता है वह सचमुच ही नौजवान हो।

मैंने आवेश में भरकर कहा, "मदनलाल अपने बाप का नहीं था। उसकी मां दर्ज़ी के साथ फंसी थी, बाद में वह उसी के साथ भाग गई। यह उन्हीं दिनों हमल में आया था।"

"तुमको कैसे मालूम ?" वह मुझ पर सन्देह कर रहा था।

"इसका बाप मेरे बाप का जिगरी दोस्त था। मेरा बाप ही इसकी मां को मनाकर दर्ज़ी के घर से वापस लाया था। इसका बाप मेरे बाप से कुछ भी छिपाता नहीं था। जब यह पैदा हुआ था, तभी इसके बाप ने मेरे बाप को यह बात बता दी थी। वह खूब रोया था।" मैंने इस तरह कहा जैसे मैं उस समय वहां उपस्थित था और रोना मैंने अपनी आंखों देखा था।

"हो सकता है।" उसने कहा और सिर झुकाकर चुपचाप चलने लगा।

"हो सकता है नहीं, है। यह बात मेरे सिवाय किसी को नहीं मालूम।" मैंने इस बात पर इतना जोर दिया कि इतना स्वयं मुझको यह विश्वास दिलाने के लिए काफी था कि जो कुछ मैंने कहा है, वह राई-रत्ती सही है, हालांकि मदनलाल के कुल के बारे में मैंने जो भी कहा था, वह सरासर झूठ

था। उसके बाप को मैंने कभी देखा भी नहीं और मेरे विचार में मेरे बाप ने भी शायद ही उसे जाना हो। मगर इससे क्या फर्क पड़ता है ?

घण्टाघर के नज़दीक पहुंचकर अरथी धीमी पड़ गई थी। सड़क पर सौदा बेचने वालों की भीड़ थी। इस भीड़ में वह, मेरे साथ का वह गपोड़ी, कहीं रुक गया। अच्छा ही हुआ। वह ज़्यादा देर मेरे साथ टिक नहीं सकता था।

घण्टाघर से आगे चलकर जुलूस एक गली में घुसा, जिसे पार करने पर वह पुल मिलता था जिसके दूसरे छोर पर मरघट था। गली में घुसते ही मैंने अपनी नाक बन्द कर ली। जगह-जगह बच्चों ने हगा-मूता था, जिन पर मक्खियां भिनभिना रही हैं। दीवारों पर सिनेमा के पोस्टर, वैद्य-नाथ प्राणदा का विज्ञापन और गेरू से लिखी हुई गालियां थीं। मेरा बस चलता तो मैं आंख भी बन्द कर लेता।

राम-राम कर गली तय की। गली में घुसते ही अरथी वाले भी चुप पड़ गए थे, जैसे बैलूनी पार कर रहे हों—बाहर निकलते ही फिर चीखने-चिल्लाने लगे—'राम-नाम, सत्त है।'

'सबकी यही गत्त है।' मुझको खुशी हुई कि कम-से-कम एक बार मेरी आवाज़ मुक्त कण्ठ से निकली। मगर संसार का रवैया देखिए। अरथी में कुल पन्द्रह-बीस आदमी रह गए हैं। बाकी चूतड़ झाड़कर चलते बने। यही होता है। अन्त तक कौन साथ देता है !

खड़ाऊं वाला ज़रूर अब भी साथ चला जा रहा है। पट्ठे में दम है। बैसवाड़ी है न। मेरे दादा भी बैसवाड़ी के थे—मगर हम लोग बम्हन नहीं हैं। बम्हनों से मुझको बहुत चिढ़ है। जब भी कोई बम्हन घर आता है मेरी पत्नी 'आइए महाराज' कहकर उसके चरण छूती है। सीधे स्वर्ग जाना चाहती है न। पुल पर कदम रखते हुए एक ने हांक लगाई, 'गंगा मैया की जै!' गधा! इस सड़ियल नदी को गंगा कहता है, जिसमें दोनों शाम आधा शहर हगता है और आधे शहर की औरतें नंगे नहाती हैं। मैं नास्तिक हूं, नास्तिक। सबको नेस्तनाबूद कर दूंगा। इस पुल को भी।

"अब आ गए हैं।" मेरे बगल में चलते हुए नाई ने कहा।

"हां, आ गए हैं।" मैंने बुजुर्गों की तरह कहा।

"कै गंडा आदमी बचे ?" उसने पूछा।

"मुझे पता नहीं।" मैंने बेरुखी से जवाब दिया।

"कै कौड़ी रुपए लुटाए हैं ?"

"मैं रुपए-पैसों का हिसाब नहीं रखता।" उसे सकपकाया देख, मुझे गहरा सुख हुआ। नाई का यहां क्या काम ?

पुल पर अरथी की रफ्तार बिलकुल चिउंटी जैसी हो गई थी। सब लोग पता नहीं क्यों चुप पड़ गए थे। थक गए हैं। उनकी थकान के खयाल से मुझमें स्फूर्ति पैदा हुई। मैंने आगे बढ़कर अरथी पर अपना कंधा लगा दिया। मदनलाल ! भैया मदनलाल ! मुझको माफ करना। मैं बहुत नीच आदमी हूं। तुम्हारे बारे में पता नहीं क्या-क्या कह गया। माफ करना भैया। मेरी आंखों में, मुझको लगा, आंसू उमड़ आए हैं। मगर आंसू उमड़े नहीं थे, उमड़ने को थे। मैंने अपने को सम्हाल लिया। रोना ठीक नहीं।

पुल पार कर अरथी घाट पर उतर गई थी—चार आदमियों ने अरथी अपने कंधे से उतार ज़मीन पर रख दी थी। अब मदनलाल को स्नान कराया जाएगा।

जो नौजवान, मदनलाल के चबूतरे पर, उसकी अरथी तैयार कर रहे थे, वे ही आगे बढ़े और शव को नंगा कर दिया गया। मदनलाल का नंगा शरीर देखकर मैं चौंका। उसकी देह फूली हुई थी। रात-भर में खराब तो नहीं हो गई ? नहीं, यह ऐसे ही रही होगी।

कहीं से एक पंडित निकल आया। ज़रूर वहीं रहा होगा। उसने मदनलाल के लड़के को मन्त्रोच्चार कराना शुरू किया। लड़का मन्त्र पढ़ता जाता था और पण्डित के आदेश पर पिता के शव पर गंगाजल छिड़कता जाता था। उसकी आंखों में आंसू नहीं थे। उसे देखकर मेरे मन में कचोट हुई। हां, कचोट ही हुई—यह बात मैं झूठ नहीं कह रहा हूं।

पण्डित ने जल्दी-जल्दी मन्त्र समाप्त कर कहा, 'हो गया स्नान।' शव को न नहलाया गया, न धोया गया, बस हो गया स्नान। ठग है, ठग। यह बम्हन ठग है। इसीलिए तो क्रिया-कर्म कराने वाले बम्हन को 'महाब्राह्मण' कहा जाता है। लूट है, लूट। इसी के पांच रुपये ले लेगा। ज़्यादा।

ज़रा-सी दूर पर चिता सजाई गई थी। उधर से एक आदमी, 'देर क्या है' कहता हुआ आया। शव को फिर अरथी पर ढक दिया गया और उसे

चिता के करीब ले जाया गया।

मुझसे यह नहीं देखा जाएगा। मैं रोने लगा था। मुझको डर लगता है। मुझको पता नहीं कोई चीज़, जिससे डर लगता है।

"मदनलाल तुम्हारा क्या लगता था?" एक अनजान आदमी मेरे आंसुओं से खिचकर मेरी तरफ चला आया था।

"क्यों? आदमी की मौत में शामिल होना गुनाह है क्या?" मेरे मुंह से निकला। वह निरुत्तर दूसरी तरफ चला गया था।

शव चिता पर रख दिया गया था और लकड़ियों पर घी छिड़का जा रहा था। बस, एक लौ की ज़रूरत है। लड़का कितनी निष्ठा से क्रिया-कर्म किए जा रहा है। लड़का मुझको अच्छा लगने लगा था। कपाल-क्रिया वही करेगा। कपाल-क्रिया की याद आते ही मुझे घबराहट हुई। मेरी कपाल-क्रिया कौन करेगा? मेरे कोई सन्तान नहीं। तभी तो मेरी पत्नी कहती है, "तुम्हें सरग नहीं मिलेगा।" कोई बात नहीं। सुनते हैं, महाबम्हन को पैसा देने से मामला ठीक हो जाता है।

चिता धधक उठी थी। हे परमपिता परमेश्वर! हे नारायण! हे गंगोत्री! हे जमनोत्री! क्या-से-क्या गति होती है!

चिता की लपटें किस तरह उठ रही हैं। सब-कुछ स्वाहा हो रहा है, खाया-पिया, भोगा-अनभोगा, सब-कुछ। एक बार तो लगा ये लपटें मेरी ओर दौड़ी आ रही हैं, मुझको छू लेंगी, मैं डरकर पीछे हट गया। फिर धीरे-धीरे लपटें नीचे गिरने लगीं, आग का गुस्सा ठंडा पड़ने लगा।

"फूल परसों चुने जायेंगे।"

लोग जाने की तैयारी कर रहे थे। कुछ तो चले भी गए थे। लड़का सिर झुकाए हुए खड़ा था। उसके कुरूप सलाहकार ने पण्डित का भुगतान कर दिया था। जब केवल दहकते हुए अंगारे रह गए तब वे तीन-चार लोग लड़के को सहारा दिए ले चले। उनके साथ-साथ वह खड़ाऊं वाला भी था।

उन्होंने एक बार मुड़कर देखा और पाया कि मैं अब भी वहीं खड़ा हुआ हूं। तब खड़ाऊं वाले ने वापस आते हुए कहा, "तुम यहां क्या कर रहे हो? जाने वाला तो गया।"

"यही तो।" मैंने कहा। मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहूं।

"तब चलो।" उसने मुझे डांटा।

उसकी डांट खाकर मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगा। उसकी खड़ाऊं चट-चट बजती थी और मैं हर बार सहमता था।

थोड़ी दूर चलने के बाद उसने मुझसे अनोखी बात कही।

"तुम जानते हो यह लड़का किसका है ?"

"उहूं।" मैंने घबराकर उत्तर दिया।

"यह मदनलाल का लड़का नहीं है। इसकी मां यानी मदनलाल की स्त्री हलवाई के साथ फंसी थी। बाद में वह उसके साथ भाग गई। यह उन्हीं दिनों हमल में आया था।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?" मुझे रस आने लगा था।

"मैं ही इसकी मां को मनाकर हलवाई के घर से वापस लाया था। जब यह पैदा हुआ था, तभी मदनलाल ने मुझको यह बात बताई थी। कई दिन तक रोया था।"

"हो सकता है।" मैंने कहा।

"क्या कहा ? हो सकता है ? जो मैं कह रहा हूं, वह झूठ है ?" खड़ाऊं वाले ने आंख तरेरी।

"अगर मैं यह बात सबको बता दूं तो इस लड़के को जायदाद-वायदाद कुछ न मिले।"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया—उसकी बात पर विश्वास करने का प्रयत्न करता रहा। पुल पार कर वह मुड़कर नदी के किनारे-किनारे निकल गया था। मैं सीधे गली में घुस गया और नाक बन्द कर ली। एक मकान की दीवार पर चढ़कर एक लड़का बड़े-बड़े हरफों में मनपसंद गाली लिख रहा था।

लड़की

लड़की आकर बेंच पर बैठ गई। पर्स उसने अपनी गोद में रख लिया।

बेंच उसके बैठने से भरी लगने लगी और कुछ दूर एक दूसरी बेंच पर बैठा हुआ मैं उसकी ओर मुड़ गया और चुपचाप उसे देखने लगा।

घास कुछ गीली थी और पार्क में अपेक्षाकृत आज कुछ कम लोग थे। रोज़ नज़र आने वाले चेहरों में से बहुत कम आज उपस्थित थे—शायद वर्षा के कारण। और, मैंने सोचा, यह अच्छा ही है।

लड़की पार्क के लिए एक नया आकर्षण थी और अपनी दिनचर्या के कीचड़ में धंसी हुई उस बेंच पर वह मुझे विशिष्ट प्रतीत हुई। किन्तु उसके शरीर में कुछ भी विशिष्ट न था। उसकी आंखें छोटी थीं और कपाल कुछ धंसा हुआ था। कद से वह लम्बी थी। साथ ही दुबली होने के कारण वह मरियल भी जान पड़ती थी। रंग ज़रूर गोरा था, मगर नाक-नक्श बहुत अच्छे न होने के कारण उसका कोई उपयोग न था। सब मिलाकर उसे भद्दी ही कहा जाएगा—हालांकि उसमें कुछ था जिसकी वजह से उसे भद्दी सोचने में मुझ तकलीफ हुई।

उसने पर्स खोला, लिपस्टिक निकाली और अपने सूखे पपड़ियाए होंठ रंगने लगी।

उसने अब तक मुझे नहीं देखा था। अपने होंठ रंगने में मशगूल थी।

फिर उसने कन्धे पर पड़ा हुआ अपना आंचल ठीक किया, पर्स बन्द कर बगल में अपनी बेंच पर रख दिया और कुछ सन्तुष्ट नज़र आई।

फिर उसने अपनी निगाह इधर-उधर दौड़ानी शुरू की—सड़क पर और पार्क के भीतर लोगों पर।

अभी यह उस्ताद नहीं हुई है। मैंने सोचा। इस पेशे में नई-नई आई है। इसीलिए कुछ डरी हुई भी है।

उसका ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए मैं खांसा और तुरन्त उसकी निगाह मुझ पर पड़ी। उसे गफलत में डालने के लिए मैंने जानकर लापरवाही के साथ उसे देखा और अपनी जेब से निकाल सिगरेट सुलगाने में व्यस्त हो गया।

मैंने अपनी निगाह दूसरी ओर कर ली थी। मगर बार-बार कनखी से देख रहा था कि वह अब भी मुझे देख रही है या नहीं ? वह सचमुच ही मुझे गौर से देख रही थी और जिस तरह वह बेंच से टिकी हुई थी, उससे उसकी गरदन में बल पड़ रहा था। जब मुझे विश्वास हो गया कि इतनी देर में उसे मेरी उपस्थिति का पूरा एहसास हो गया है, तब मैं उसी लापरवाही के साथ उसकी ओर मुड़ा। अपने में मेरी दिलचस्पी वह कुछ भांप ले और कुछ न भी भांप पाये, यह सोच मैंने अपनी बगल में पड़ा अखबार उठा लिया। हर दो-तीन मिनट बाद अखबार से आंख उठाकर उसे देखता और फिर पढ़ने में व्यस्त हो जाता। इस सारी देर में मैंने पाया, मुझे देखने का उसका सिलसिला बना रहा। वह जितनी ढीठ है, उतनी आकर्षक नहीं। मैंने सोचा, मुझे भी खुलकर आना चाहिए। और अखबार मैंने मोड़-तोड़कर जेब में डाल लिया और उससे नज़रें मिलाने का निश्चय कर पूरी तरह उसकी ओर हो लिया।

वह अब भी मुझे देख रही थी। मैंने सोचा, अब वह मुझे देख मुस्करायेगी।

लड़की बेवकूफ जान पड़ती है। वह गाहक फंसाना भी नहीं जानती। वह सोचती है, दुनिया उसकी गोद में आ टपकेगी।

मैंने अपनी नज़र उस पर से हटा ली थी और दूसरी ओर देखने लगा। मैं नहीं चाहता था कि उसे एहसास हो कि मैं गरजमन्द हूं— और

दरअसल मैं गरज़मन्द था भी नहीं।

अब उसका क्या रुख है? मैं कुछ समय बाद उसकी ओर मुखातिब हुआ और देखा कि वह दूसरी दिशा में देखती हुई हंस रही थी। उसके दांत बहुत खूबसूरत थे, बल्कि सारे शरीर में एक अकेली यही चीज़ खूबसूरत थी।

उसे हंसता देख मुझे गुस्सा भी आया और कुछ विश्वास भी हुआ कि वह इतनी सुस्त नहीं, जितनी मैं समझता था।

ज़रा इधर। मेरी इच्छा हुई मैं हल्की-सी सीटी बजाकर एक बाज़ारू फिकरा कसूं और उसे अपनी ओर पूरी तरह आकृष्ट कर लूं। वैसे तो तमाम औरतों को, मगर खासकर बाज़ारू औरतों को, हल्की बातें सबसे अधिक पसन्द आती हैं।

मगर वह खुद ही मेरी ओर मुड़ गई और उसने इस बार भरपूर निगाहों से मुझे देखा।

यही वक्त है। मैंने सोचा। वह खुद ही इशारे कर रही है। और मुझे यह क्षण नहीं गंवाना चाहिए।

अतः मैंने उसे आंख मारी और उसे देखकर मुस्कराया।

मैंने सोचा था, वह उठकर मेरी तरफ आ जाएगी और फिर मैं निपट लूंगा।

मगर या तो वह बहुत घाघ थी या झेंपू। उसने तत्काल अपनी गरदन झुका ली, गोया उसने यह सब देखा ही न हो।

बहरहाल वार खाली जाने पर मुझे झुंझलाहट उतनी नहीं हुई जितनी अपने घटियापन का एहसास।

अब उसने पर्स से लिपस्टिक फिर निकाल ली थी और अपने होंठ रंग रही थी।

खैर, मुझे उससे कोई सरोकार नहीं। मैं व्यर्थ ही इस लड़की के साथ केवल मज़े के लिए अपने को गिराए जा रहा हूं।

मैंने अपना मुड़ा-तुड़ा अखबार फिर निकाल लिया और जबरन पढ़ने की कोशिश करने लगा। इस तरह मैंने दो-तीन कालम पढ़ डाले।

वह अभी तक है या गई? अकस्मात् उत्सुकता हुई। और मैंने देखा

इस बार वह मुझे नहीं, अपनी कलाई में बंधी घड़ी को देख रही थी।

तो यह बात है ! कमबख्त किसी का इन्तज़ार कर रही है। उसके इन्त-ज़ार करने के खयाल पर मुझे झुंझलाहट हुई। मैंने बेकार ही अपना वक्त ज़ाया किया।

जिस स्त्री में हमारी साधारण-सी दिलचस्पी हो, अगर उसके विषय में यह मालूम हो जाए कि वह किसी खास व्यक्ति की अमानत है तो मन में एक दर्द पैदा होने लगता है। पता नहीं क्यों उस अपरिचित स्त्री से अनजाने ही अपने अन्दर एक रिश्ता कायम हो जाता है और पुरुष के प्रति एक प्रति-द्वन्द्विता का भाव पैदा हो जाता है।

वह जिसका इन्तज़ार कर रही थी, मैंने उसके प्रति शत्रुता-सी अनुभव की और महसूस किया कि उस व्यक्ति ने बिना लड़े ही मुझे परास्त कर दिया है।

खैर, यह होता ही रहता है। और आखिर इसमें बेवकूफी मेरी थी। मुझे इसमें दिलचस्पी लेनी ही नहीं चाहिए थी।

अपनी मूर्खता पर कुछ शर्म का अनुभव कर मैंने सोचा, मुझे यहां से उठ जाना चाहिए और किसी जगह जाकर बैठ जाना चाहिए।

लड़की किसी दूसरी तरफ देख रही थी। मैंने सोचा यही वक्त है। मुझे नज़र बचाकर निकल जाना चाहिए।

मैं उठा। मगर जैसे ही मैं उठा, लड़की मुड़ी और उसकी निगाह मुझ पर पड़ी। मैं तत्काल नीचे गिरा। अखबार उठाने का बहाना कर झुका और अखबार उठाकर बेंच पर ठीक उसी जगह बैठ गया और यह बताने की कोशिश की कि कुछ हुआ ही नहीं।

अगर उसने मुझे भाग निकलते देख लिया होता तो ज़रूर मुझे कायर समझती। एक आदमी का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है कि वह स्त्री उसे कायर समझे।

मुझे एक बार फिर पराजय का अनुभव हुआ—इस बार उस लड़की से।

धीरे-धीरे मैं अपनी जगह पर पसर गया और सोचने लगा, अभी उसका प्रेमी आयेगा, उसे सिनेमा दिखाएगा, किसी अच्छी जगह खाना खिलाएगा

और सैर कराएगा। लड़कियां, चाहे प्रेमिकाएं हो या कुछ और, होती सब घटिया हैं।

मैंने अपनी अंगुलियां अपनी पलकों पर से हटाईं और उस बेंच की ओर देखा। इस बार वह अपनी गोद में रखी मूंगफलियां चबा रही थी।

यह खानदानी लड़की नहीं। मैं अपनी सूझ पर खुश हुआ। अगर यह अच्छे घर की होती तो इस तरह पार्क की एक बेंच पर बैठी हुई मूंगफली न चबाती होती।

वह मूंगफली चबाती जा रही थी और छिलके इधर-उधर छितरा रही थी। एकाएक वह उठ खड़ी हुई और अपना आंचल ठीक किया और पल्लू झाड़ा जो ज़रूर मूंगफली रहने से कुछ गंदा हो गया होगा।

उसने लापरवाही के साथ मुझे देखा। वह जाने की तैयारी कर रही है, मैंने सोचा। मुझे कुछ खुशी भी हुई कि उसका प्रेमी नहीं आया और कुछ सहानुभूति भी हुई। मैं जानता हूं, उसे कितनी निराशा हुई होगी।

वह आगे बढ़ी और गीली घास पर धीरे-धीरे चलने लगी। मैं अपने-आप उठा और कुछ हटकर उसके पीछे-पीछे चलने लगा—हालांकि अब तक उसके प्रति मेरे मन में एक परायापन आ चुका था।

मैं न तो उसका पीछा कर रहा हूं, न यह जानना चाहता हूं कि वह कहां जाती है? न ही मुझे उत्सुकता है कि वह कौन है? मगर तब भी मैं क्यों उसके पीछे चला जा रहा हूं?

वह पार्क के बाहर आई। मैं भी बाहर आया। वह एक बार पीछे मुड़ी और उसने मुझे देखा। उसे ज़रूर हैरानी हुई होगी। या हो सकता है वह एक सभ्य लड़की हो और मुझे लफंगा समझ रही हो। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मगर जब उसकी नज़र मुझ पर पड़ी तो मेरे पैर फौरन दूसरी दिशा में मुड़ गए। मैंने उसे विश्वास दिलाने की कोशिश की कि यह एक संयोग ही है कि वह जिस वक्त उठी, मैं भी उस वक्त उठा और वह जिस रास्ते से बाहर आई, मुझे भी उसी रास्ते से बाहर आना था।

बहरहाल बहुत हो चुका। इसके पहले कि वह मेरे विषय में किसी नतीजे पर पहुंचे, मुझे उसकी नज़र से दूर हो जाना चाहिए।

मैं उससे ठीक विपरीत दिशा में जाने लगा। कुछ दूर चलकर पीछे मुड़कर देखना चाहा—हो सकता है वह मेरा पीछा कर रही हो। मगर वह कहीं नज़र नहीं आई। मैं रुका और इधर-उधर मुड़कर मैंने उसे तलाशने की कोशिश की। मैंने देखा, वह पार्क में लौटकर उसी बेंच पर बैठ गई थी और बेफिक्री के साथ मूंगफली चबा रही थी।

मिचली

सीढ़ियों पर चढ़ते हुए उसे हमेशा दुर्गन्ध आती थी उबले हुए अंडों और प्याज़ के छिलकों की, मसाले और जली हुई दाल की, सीलभरे कपड़ों और न जाने किस चीज़ की। वह वहां ठहर नहीं पाता। तेज़ी से भागता सीढ़ियों पर अपने ऊपर के कमरे की ओर, जहां वह अकेला रहता था।

तीन साल पहले जब वह आया था, तब भी इस निचले तल्ले के इस कुनबे से उसे वैसी ही गंध और शोर आता था। कुछ ही दिनों में उसने तय कर लिया कि वह यहां नहीं रहेगा। मगर अब भी वह रह रहा था। तमाम गन्दगी, दुर्गन्ध और शोर के बावजूद। वह ऊपर आता हुआ नाक पर रूमाल रख लेता और कल्पना करने की कोशिश करता, दरअसल वहां कुछ नहीं है। उसका वहम है।

कोशिश के बाद भी जब वह इस पर विश्वास नहीं कर सका तो जानने की कोशिश की कि आखिर वहां है क्या ? दो-एक बार ताक-झांक के बाद उसने पाया कि एक छोटा-सा कमरा है, जिसके एक कोने में रसोई है और दूसरे कोने में एक पुरानी-सी मेज़ जिसके ठीक सामने दीवार पर एक कई साल पुराना कैलेंडर है और सिनेमा वालों और हनुमान का एक चित्र है। कमरे के बीचोबीच एक छोटी खाट है और उसकी बगल में एक उससे भी छोटी खाट और तीसरे कोने पर एक खटोली। कमरे का फर्श इतना गंदा

है कि वह फर्श है या मिट्टी ? अन्दर की ओर एक बरामदा है जहां बिठाकर वह औरत छोटे बच्चे को पाखाना फिराती है। उसका जी मिचलाने लगा।

बच्चे कई हैं। लगभग सात या हो सकता है आठ। उसने गिनने की कोशिश नहीं की। स्त्री अधेड़ है। पुरुष भी। मगर उसका शरीर काला, भुजंग और विकराल है। उसे देखकर उसे क्रेन की याद आती जो बड़ी-से-बड़ी चीज़ को अपने जबड़ों में एक खिलौने की तरह उठा लेती है। उसे अपने इस खयाल पर मज़ा आया कि रात को यह आदमी भी एक औरत को इसी तरह उठा लेता होगा। मज़े की बात यह थी कि उस आदमी की आवाज़ बहुत पतली और सुरीली थी। तब उसे हैरानी हुई कि वह इतनी कमज़ोर आवाज़ से अपनी बीवी को कैसे दबाता होगा। मगर जब उसने ढेर सारे बच्चे और स्त्री का पिलपिला शरीर देखा तो उसकी समझ में आ गया।

जब वह सीढ़ियों पर गुज़रता तो कचरे के ढेर की तरह देहरी पर पड़े और द्वार पर खेलते उस घर के बच्चे उसका सूट देखकर सहम जाते, हालांकि उसका सूट बहुत मामूली था—कई बार रफू किया जा चुका था। उसे यह देखकर खुशी भी होती कि कोई उसके कपड़ों से भी सहम सकता है। वह चाहता कि उसके आतंक का यह घेरा कभी न टूटे, इसलिए वह और भी अलगाव के साथ उधर से गुज़रता।

उसके लौटने का कोई वक्त न था। वह किसी भी समय आता और धड़धड़ाता हुआ चढ़ जाता। देर से रात को लौटने पर कमरा बन्द देख उसे जिज्ञासा होती कि अन्दर वे क्या कर रहे हैं ?

उसे बिलकुल विश्वास था कि यह आदमी ज़रूर अपनी स्त्री को पीटता है। स्त्री के बियाबान और मार खाए चेहरे से ही यह साफ था। एक रात जब खुश और धुन गुनगुनाता हुआ लौटा तो सुना, कमरे के अन्दर से पुरुष के हांफने और स्त्री के हल्के-हल्के चीखने की आवाज़ आ रही थी। ज़रूर उन दोनों में हाथापाई हो रही है। वह रुक गया और दरवाज़े की सेंध से झांपने की कोशिश की। उसने पाया कि वह चारपाई पर पड़ी हुई है और मर्द उन्मत्त होकर उसके अंगों को चूम रहा है और नोच-बकोट रहा है।

वह उसे प्यार कर रहा है। उसने कहा और चाहा कि वहां से हट

जाए। मगर वह वहीं बना रहा और जब तक पुरुष बुझकर स्त्री के पड़ोस में गिर न गया तब तक वह तनाव-भरे सुख में जकड़ा खड़ा रहा। फिर उस दृश्य को अपने अन्दर दुहराता वह ऊपर आ गया और अपने कमरे की बत्ती जलाते ही उसे महसूस हुआ कि सब-कुछ बड़ा ही घिनौना था।

सचमुच वह उनसे बहुत घिन करता था। कोई भी उसका परिचित न था जिससे उसने उनकी बात न की हो। उनके घिनौने जीवन की बात करते हुए उसे अन्दर-ही-अन्दर सुख का अनुभव होता और वह महसूस करता कि उसने अपना बदला ले लिया है।

लेकिन वह समझ नहीं पाता कि वह दरअसल किस बात से घृणा करता है ?

कुछ महीनों से उसे उन पर और भी गुस्सा आ रहा था। बदमाशों ने एक रेडियो-सेट खरीद लिया था जो सारा वक्त बजता रहता था। जब वह सीढ़ियों पर उतरता तो उसे अनुभव होता। जब वह उतरता होता है तो वे रेडियो की आवाज़ और तेज़ कर देते हैं। कमीने ! उसे सचमुच उन पर बहुत गुस्सा था। उसने बिलकुल तय कर लिया कि वह मकान छोड़ देगा। मगर छोड़ने के पहले उन्हें वह सबक सिखाएगा कि याद रखें। उसने दोस्तों से जगह तलाशने को कहा भी। एक बार इस सिलसिले में मकान-मालिक के पास भी गया। मगर फिर बिना कुछ कहे लौट आया। उसने सोचा कि उसे उनके विषय में सोचना बन्द कर देना चाहिए। उसे यह मान लेना चाहिए कि वे नहीं हैं। और खुश होकर उसने अपने कमरे की खिड़कियां खोल दीं। पुस्तकों पर जमी धूल साफ की और तय किया कि कल से वह बिलकुल बेलाग होकर जीवन जिएगा।

दूसरे दिन उठने पर उसने पाया कि रेडियो से कोई स्वर नहीं आ रहा है। वह कुछ खुश हुआ और कुछ उसे उत्सुकता भी हुई। शायद उनका सेट खराब हो गया है। उन्हें नुकसान पहुंचने के खयाल पर उसे संतोष हुआ और उनसे कुछ सहानुभूति भी हुई।

मगर थोड़ी ही देर बाद जब एकाएक रेडियो शुरू हो गया तो वह चौंक गया। इस बार उसे लगा, हरामज़ादों ने उसे चौंकाने के लिए ही यह किया है।

उसने जल्दी-जल्दी कपड़े बदले, चाय भी नहीं पी और निकल पड़ा। उतरते हुए उसने उन्हें देखा भी नहीं, केवल तेज़ी से सड़क पर आ गया।

सारा दिन वह खोया और झुंझलाया हुआ रहा। मगर शाम को बड़ी देर टहलने और बढ़िया चाय पीने के बाद उसकी तबीयत खुश होने लगी। उसने सारी बातों पर एक सिलसिले से नज़र दौड़ाई और उसे उन पर हंसी आई। अजब हैं कमबख्त।

सिनेमा देखने और बढ़िया खाना खाने के बाद जब वह टहलता हुआ लौटा तो पाया कि मकान में बुरी तरह अंधेरा है। हरामज़ादे सो गए। उसने बत्ती जलाई और आहिस्ता आराम से सीढ़ियां चढ़ने लगा। उसने सोचा अपने कमरे में जाकर कोई अच्छी-सी किताब पढ़ेगा और फिर उसे धीरे-धीरे नींद आ जाएगी और वह सुबह देर तक सोता रहेगा।

मगर उनके कमरे के पास पहुंचकर उसके पैर ठिठक गए। वह रुका और उसने द्वार पर अपने कान लगा दिए। फिर वही आवाज़। उसने पाया पुरुष फिर उसी तरह हांफ रहा था और स्त्री फिर उसी तरह चीख रही थी। उसने सेंध से देखने की कोशिश की और देखता रहा।

कमीने ! लुच्चे !

उसके माथे की तमाम शिराएं तन गई थीं और कमरे में लौटने के बाद उसे नींद नहीं आई। वह एक भयंकर तनाव में छटपटा रहा था। उसने संकल्प किया कि चाहे कुछ भी हो वह सुबह उनसे निपटकर रहेगा।

सुबह जब उठा तो आंखें कड़वा रही थीं और जी मिचला रहा था। थकान थी। मगर उनसे बात करनी ही होगी। इस तरह नहीं चल सकता। खीझकर उसने कपड़े पहने, तैयार हुआ और उतर पड़ा। कमरे के पास रुका और द्वार खटखटाने के लिए हाथ बढ़ाया। मगर फिर तेज़ी से नीचे उतरकर सड़क पर आ गया। उसे खुद पर बहुत गुस्सा आया। आखिर वह उनसे साफ-साफ बात क्यों नहीं कर सकता। उसने फिर निश्चय किया और इस बार मज़बूत कदम उठाता हुआ द्वार के सामने आ खड़ा हुआ। अपनी कांपती अंगुलियों से हलकी-सी दस्तक दी और थोड़ी देर के बाद द्वार खुला। उसने देखा, वह स्त्री सामने खड़ी थी। उसे देखकर स्त्री ने अपना घूंघट काढ़ लिया और अन्दर चली गई।

फिर शरीर पर तौलिया लपेटे आदमी बाहर निकला और इज़्ज़त के साथ उसे अन्दर ले जाते हुए बोला, "आप तो इधर कभी आते नहीं।"

'कमीन!' वह मन-ही-मन बुदबुदाया और कमरे पर अच्छी तरह नज़र दौड़ाने लगा। 'गन्दे!' उसे उनसे फिर बहुत घिन हुई।

उसने उसे एक छोटे-से स्टूल पर बिठा दिया था और पत्नी से चाय बनाने के लिए कह रहा था।

उसने देखा, उसका एक बच्चा खटोली पर पड़ा था, दूसरे की नाक से रेमट बह रही थी। तीसरा चाक से फर्श पर तसवीर बना रहा था। लड़की की उम्र बारह-तेरह साल थी जो मसाला पीस रही थी। सबसे छोटा बच्चा छह महीने का था, जिसे स्त्री अपनी गोद में लिए हुए थी।

चाय की प्याली उसके हाथ में थमाते हुए उस आदमी ने फिर अपना प्रश्न दोहराया, 'आप तो इधर कभी आते ही नहीं।' उसने अपने हाथों में थमी प्याली पर गौर किया। कप की नाक टीन की, जिसके जोड़ पर मैल जमी हुई। चाय एकदम काली, दूध का नामोनिशान नहीं। सभ्यता के नाते उसने एक सिप ली और उसका जी मिचलाने लगा। अच्छा हुआ। उसने चाहा कि एक बार मिचलाकर कै हो जाए। और उसे लगा, उसकी कै के साथ यह सारा कमरा, यह पुरुष, यह स्त्री, ये बच्चे, यह शोर, यह घृणा, यह गुस्सा, यह समूचा दृश्य निकलकर एकबारगी बाहर आ जाएगा। मगर चाय की वह घूंट पेट में एक बार बवंडर मचाकर शान्त हो गई। उसे स्वयं पर पहली बार इतना क्रोध आया कि उसे लगा, अब वह ज़ब्त नहीं कर पायेगा।

उसने उस आदमी की तरफ देखा, घृणा में नाक सिकोड़ी और गुस्से में कहना चाहा, 'मुझे आपके बच्चे बिलकुल नापसन्द हैं।' मगर तेज स्वर में उसके मुंह से निकला, 'आपके बच्चे बहुत प्यारे हैं।' अपने स्वर की तेज़ी पर उसे जितनी खुशी हुई, अपनी ज़बान से निकले वाक्य पर उससे अधिक आश्चर्य।

उसने देखा, कृतज्ञता में उसका पड़ोसी मुसकरा रहा था और उसकी स्त्री घूंघट के अन्दर से उसे देख रही थी।

'टुच्चे!' मगर इस तरह काम नहीं चलेगा। उसे सब-कुछ साफ-साफ

मगर संयत होकर कह देना चाहिए।

अतः उसने अपने-आपको संयत करते हुए कहना चाहा, 'आपका यह रेडियो बहुत शोर करता है।' मगर उसके मुंह से आहिस्ते निकला, 'आपने यह रेडियो कितने में लिया ?'

उसने सुना, वह कह रहा था, 'किस्तों में लिया है। पौने तीन सौ का है।'

'लानत है !' मुझ जैसा आदमी दुनिया में कहीं नहीं होगा।

एक झन्नाटे के साथ कप फर्श पर रखकर वह उठ खड़ा हुआ। दरवाज़े की ओर बढ़ा और पूरी ताकत के साथ कहना चाहा, 'देखिए, मैं आपसे घृणा करता हूं।' मगर पूरी ताकत के साथ उसने कहा, 'देखिए, मेरी वजह से आपको कोई असुविधा तो नहीं होती ?'

और तेज़ी से उतरता हुआ वह सड़क पर आ गया। बहुत दूर चलने और कुछ शांत होने के बाद उसने अनुभव किया, उसका जी अब भी मिचला रहा था।

घर

एक स्त्री और एक पुरुष मेरे अहाते में आये। मैंने झांककर देखा। पानी के लक्षण थे।

स्त्री के कपड़े मैले-कुचैले थे और पुरुष के भी। स्त्री की गोद में बच्चा था और पुरुष का हाथ भी पकड़े हुए थी। पुरुष अन्धा था और इसीलिए वह आगे थी।

वर्षा का डर दोनों को था। स्त्री को कुछ अधिक। वह घबराई हुई थी। मर्द को वह जैसे खींचती हुई लिये आ रही थी।

दो सीढ़ियां चढ़ वह मेरे बरामदे पर आ पहुंची और गोद का एक-डेढ़ साल का बच्चा, जो एक लम्बी कमीज़ में करीब-करीब पूरी तरह खो गया था, फर्श पर सुला दिया। पुरुष ने हवा में हाथों-ही-हाथों कुछ टटोलते हुए पूछा, "आ गये?"

"आ गये।" स्त्री ने जवाब दिया।

"कोई हो?"

"कोई नहीं है।" स्त्री ने फिर उत्तर दिया और अपनी ओढ़नी संवारने में लग गई।

"मैं ज़रा पेशाब कर लूं?"

"कर ले।" स्त्री ने अपने में बुझे-ही-बुझे कहा, "ज़रा संभल के।

दूसरी तरफ दीवार है।"

"चुप !" मर्द ने डपटते हुए कहा, "मुझे सीख देती है !"

और वह मेरे घर की दीवार की तरफ मुंह कर बैठ गया।

फारिग होकर वह फिर स्त्री की तरफ आया और अपनी पीठ घुमाता हुआ बोला, "पीठ खोल।"

उसकी पीठ पर एक बड़ा भारी गट्ठर था जैसा अक्सर फेरीवाले लादकर चलते हैं। स्त्री ने उसकी पीठ पर बंधा गट्ठर खोल दिया जो धप्प की आवाज़ करता हुआ फर्श पर आ गिरा।

मैदान और पेड़ों पर दौड़ती हुई बौछार तेज़ी के साथ आ रही थी और पहले झपाटे में उन दोनों को भिगो गई।

बरामदे के एक कोने की तरफ लपककर सिकुड़ते हुए पुरुष ने कहा, "लौंडा भी भीग गया ?"

स्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया। लम्बी कमीज़ दोहरी-तिहरी कर बच्चे को उसी में लपेटने में लगी रही। फिर अपने-आप ही बुदबुदायी, मैंने इसे घुट्टी दे दी थी। तबई मैं कहूं कमबख्त कैसे आराम से सोया है।

मेरे कमरे का द्वार ठीक वहीं खुलता था, जहां वे दोनों इस समय अपनी जड़ें फेंक रहे थे।

मैं अपने घर में अकेला हूं। मैंने ब्याह भी नहीं किया। कोई इरादा भी नहीं है। घर पर भी कम ही रहता हूं। अपने पड़ोसियों से भी सरोकार मुझे लगभग नहीं है। अधिकतर के मैं नाम भी नहीं जानता—सूरत से ज़रूर वाकिफ हूं।

मैं अपनी खिड़की के पास बेंत की एक कुरसी पर बैठ गया, बाहर की ठंडी हवा के झोंके खाने लगा।

स्त्री एक दूसरे कोने पर जाकर बैठ गई थी। उसने बच्चे को फिर अपनी गोद में ले लिया था। पुरुष मेरी खिड़की के बिलकुल सामने आकर खड़ा हो गया और अबके मैंने उसे नज़दीक से देखा।

डील-डौल से वह अच्छा-खासा था और उसकी काठी भी मज़बूत थी। हालांकि उम्र उसकी पैंतालीस से कम नहीं जान पड़ती थी। वह बार-बार आंखें मिचमिचाता या शायद अपने अन्धकार में कुछ टोहना चाहता था।

पानी बाहर पड़ने लगा था और बौछारें भीतर तक आ-आकर बरामदे को भिगो रही थीं।

"पानी कब तक गिरेगा ?" अन्धे ने अपने मैले सूती कोट के कालर में अपने को छिपाते हुए कहा। जब उसे कोई उत्तर नहीं मिला तो उसने झुंझलाकर फिर अपना सवाल दुहराया, "अरी सुनती नहीं है क्या ? पानी कब तक गिरेगा ?"

जब उसे तब भी उत्तर नहीं मिला तो उसने अपने दोनों हाथों से दीवार को टटोला, फिर फुसफुसाया, "कहीं चली गई क्या ?"

"अरे क्या बड़बड़ा रहा है जब से। मैं पड़ी तो हूं यहीं।"

अपने दोनों हाथ दीवार पर पूरी तरह रखकर, जैसे चिपकाकर, उसने कहा, "चुप रह, हरामज़ादी।"

"तू भी चुप रह।" स्त्री ने दीवार के सहारे उठंगे-ही-उठंगे और बच्चे को गोद में लिए, जवाब दिया, "बैठ जा वहीं।"

थोड़ी देर की चुप्पी को तोड़ते हुए अन्धे ने कहा, "बहुत बरस रहा है।"

"बहुत।" स्त्री ने छोटा-सा उत्तर दिया।

वह थोड़ी देर चुप रहा। फिर अपनी गठरी टटोलते हुए कहा, "ज़री सुलगा दे।"

स्त्री अपनी जगह से उठी और गट्ठर खोल दिया जिसमें मैले-कुचैले कपड़े, कथरी और छोटे-छोटे कुछ बरतन थे। उसने एक छोटी-सी पोटली से बीड़ी का एक बंडल निकाला, फिर उसमें से एक बीड़ी निकाली। माचिस से उसे सुलगाया और खुद एक कश लेकर उसके इन्तज़ार कर रहे होंठों में खोंस दी। अन्धे ने पहला ही कश खूब गहरा लिया और मज़े में दीवार के सहारे अधलेट गया, अपनी टांगें दूर तक फैला दीं।

स्त्री ने उसके नज़दीक आते हुए कहा, "बघार है।"

"हूं।" उसने अपने मज़े में कहा, और उसे टटोलने के लिए हाथ बढ़ाया। यह देख स्त्री फुर्ती से उठ खड़ी हुई।

अगर मैंने भी वही फुर्ती न बरती होती तो निश्चय ही इस बार उसकी नजर मुझ पर पड़ी होती। मुझे लगा अगर उसने मुझे देख लिया तो पलक मारते वे दोनों खो जाएंगे। मैंने लपककर अपना सिर नीचे कर लिया।

उस एक क्षण में मैंने देखा, स्त्री का शरीर स्वस्थ था और उसकी आयु भी तीस से अधिक नहीं थी।

स्त्री फिर अपनी जगह आकर बैठ गई थी।

इस बार स्त्री ने बात शुरू की, "बारिश थम रही है।"

"अंधेरा हुआ ?"

"बाकी है।"

"घर किसका है ?"

"होगा किसी का।"

"किसका ?"

"तू पता कर।"

"मैं क्या पता करूं, मेरे कोई आंखें हैं ?"

"तेरे पैर में आंखें हैं।"

"तेरे होंगी। कुतिया कहीं की !"

उन दोनों के बीच फिर सन्नाटा बैठ गया, जिसे कुछ ही समय बाद तोड़ते हुए अन्धे ने कहा, "लौंडा बुरी तरह सो रहा है।"

"बुरी तरह।"

'जागने का टैम हो रहा होगा। ज़रा संभल के।"

स्त्री ने उसे कथरी पर सुला दिया और गठरी खोलकर उलट-पलट करने लगी।

"एक और लगा।" पुरुष ने कहा, जिस पर स्त्री ने कोई ध्यान नहीं दिया। फिर धीरे-धीरे छोटे-छोटे बरतन और कुछ छीनियां निकालकर अलग रखने लगी।

"क्या कर रही है ?" अन्धे ने गौर से उसकी खटपट सुनते हुए कहा।

"ठैर, ज़रा ईंट ले आऊं।"

"टैम हो गया ?"

"हो गया।"

मैं समझ गया, वह चूल्हा जलाने की तैयारी कर रही है।

बारिश बिलकुल बन्द हो गई थी। उसने एक बार ऊपर को देखा, फिर उठी और तलाश में बाहर चली गई।

उसकी पदचाप जब दूर चली गई तब अंधा फर्श पर खिसकता, अन्दाज़ा करता हुआ बच्चे तक गया, उसे टोहकर उसके गाल पर एक चुटकी काटी और बुड़बुड़ाया, "क्यों वे लौंडे, सोया ही रहेगा?"

उसकी चुटकी से लड़का जाग गया और जागकर रोने लगा।

बच्चे का रोना सुन स्त्री आसपास से बटोरी हुई ईंटों और पत्थरों को फर्श पर पटककर फौरन उसकी ओर लपकी और झुंझलाती हुई बोली, "तूने जगाया?"

"जाग गया। टैम हो गया था।" अन्धे ने छत की ओर देखते हुए कहा।

"अब तुई सुला।" स्त्री ने बच्चा उसकी ओर बढ़ा दिया और खुद ईंट और पत्थर जमाकर चूल्हा तैयार करने में व्यस्त हो गई।

"सो जा। सो जा। सो जा।" पुरुष उसे अपनी गोद में लिए हुए उसे थपकियों की रिश्वत देकर सुलाना चाह रहा था।

"मूता है।" थोड़ी देर बाद अन्धे ने कहा और उसे उसके नन्हे-नन्हे पैरों पर खड़ा कर सी-सी करता हुआ पेशाब कराने लगा।

"ठहर।" स्त्री ने कहा। वह चूल्हा जला चुकी थी और मिट्टी के एक बरतन में आटा गूंध रही थी। उसने अपना आंचल खोला। एक पुड़िया निकाली और छीनी अंगुली से एक काली-सी चीज निकालकर बच्चे को चटा दी। मैं समझ गया, उसने उसे अफीम दी है। बच्चे और पुरुष से मुंह मोड़ वह फिर अपने काम में जुट गई।

लड़का सचमुच ही चुप हो गया और शायद उसे नींद भी आ रही थी, क्योंकि अन्धा उसे धीरे-धीरे थपकियां दे रहा था। फिर उसने फुसफुसाते हुए कहा, "दूध पिला दिया था?"

"पिला दिया था।" स्त्री ने निर्विकार उत्तर दिया और लाल दहकते हुए अंगारों में बाटियां सेंकने लगी।

अंधेरे के कारण सन्नाटा छा गया था। आग के उजाले में उस स्त्री का दमकता हुआ चेहरा, आकर्षक और तीखा, साफ, हालांकि तमतमाया हुआ नज़र आता था।

"सौंधी हैं।" अन्धेरे में पड़ा हुआ और सूंघता हुआ पुरुष बोला।

"खूब सेंक ले। लाल हो जाने दे।" उसने फिर कहा।

"सिक गई हैं?" वह अपने-आप ही बड़बड़ाया।

"अभी नहीं सिकी होंगी।"उसने अपने-आप ही उत्तर दिया।

कुछ देर बाद बच्चे को फिर से कथरी पर लिटा वह स्त्री की ओर बढ़ने लगा।

"वहीं बैठा रह। अभी हुई जाती हैं।" स्त्री ने उसे आंच की ओर बढ़ते हुए देख कहा।

"चुप हरामज़ादी!" वह तमतमाया।

स्त्री ने तीन-चार बाटियां निकाल मिट्टी के एक ठीकरे में उसके सामने रख दीं। वह उन्हें फौरन ही हाथ में उठा, तोड़, मुंह में डाल, लार टपकाने लगा।

"बड़ी गरम हैं।" लार के कारण उसके मुंह से साफ-साफ शब्द नहीं निकल रहे थे।

"तू भी खा।" उसने स्त्री को आमंत्रित किया।

"पहले तू खा ले।" स्त्री ने दो ताज़ी बाटियां उसे और परोस दीं।

"बढ़िया पकी हैं।" अन्धे ने एक पूरा-का-पूरा कौर निगलते हुए कहा।

"तेरे लिए हैं?"

"हैं।"

"न हों, पका ले।"

"पका लूंगी।"

"पानी कहां से मिला?" अन्धे ने बातचीत बढ़ाते हुए कहा।

"बम्बे से।"

"बम्बा किसका था?"

"पता नहीं।"

"ज़रा आचमन करा दे।"

स्त्री उठकर उसके हाथ धुलाने लगी। खाना समाप्त कर उसने खुद ही डटकर पानी पिया था और थकी हुई महसूस कर रही थी।

बचे हुए जल से छींटे मार-मार वह आग बुझा रही थी और पुरुष गठरी से कथरियां निकाल सोने की तैयारी कर रहा था। वहीं दीवार के

किनारे वह पूरी तरह लेट गया था और एक बीड़ी उसने सुलगा ली थी, दूसरी स्त्री ने।

स्त्री ने अपना बिछौना उससे कुछ दूर पर बिछाया था और बच्चे को लेकर उस पर सो गई थी।

पड़े-पड़े अन्धे ने कहा, "परमात्मा ने तुझे भी आंखें न दी होतीं तो बड़ी मुसकुल होती।"

"बड़ी।" स्त्री ने बीड़ी के मज़े में कहा।

"रात हो गई?" अन्धे ने जमुहाई लेते हुए सवाल किया।

"नहीं।"

"कितनी देर है?"

"हो गई।"

"कितनी हुई?"

"सो जा।" स्त्री ने उसे झिड़कते हुए कहा।

"इधर आ।" अन्धे ने कोई उत्तर न पा कहा, "मैं ही उधर आता हूं।"

"नहीं, नहीं।" स्त्री ने फिर उसे झिड़कते हुए कहा।

"क्यों, कोई है?" अन्धे ने शंकित होते हुए प्रश्न किया।

"नहीं।"

"फिर?"

"कोई आ जाएगा।"

"कौन आ जाएगा?"

"पुलुस।"

"पुलुस यहां कहां आएगी?" और वह उसकी ओर खिसकने लगा।

"नहीं, नहीं।" स्त्री ने फिर प्रतिरोध किया, "एक और पेट में है।"

"होने दे।" इस बार अन्धे ने उसे हाथ से पकड़ अपनी तरफ खींच लिया और उसने कोई विरोध नहीं किया, चुप रही।

"तू हो गई?" अन्धे ने तृप्त और कृतज्ञ स्वर में उससे पूछा।

"तू तो हो गया?" स्त्री ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। फिर वह उठी और बाहर गई।

अन्धे ने बीड़ी सुलगा ली थी और जमुहाई ले रहा था। जब वह लौट-कर आई तब तक वह खर्राटे भरने लगा था।

स्त्री ने अपना बिछौना व्यवस्थित कर लिया था और जमुहाई ले रही थी। फिर उसने कहा, "लौंडा भी बाप पर गया है। एक बार सोता है तो जागता नहीं।" उसने बच्चे को अपनी ओर खिसकाते हुए अपनी छाती से चिपका लिया।

प्रसंग

"छिः ! तलुए कितने गंदे रखते हैं।" मेरे नज़दीक बैठे हुए उसने कहा।

"आपको गंदे रहने का शौक है।" मैंने आंख उठाकर देखा, वह शिकायत कर रही है या गुस्सा? और पाया, वह कनखी से निहार रही है। उसने जान लिया था कि मेरी आंखों में अपने अपराध की सुख-भरी छाया है।

"बोलिए, अब से गंदे नहीं रहेंगे ?" उसने प्रोत्साहन पाकर कहा।

"नहीं रहूंगा।" और मैंने विश्वास करना चाहा कि मैंने सचमुच अपराध किया है।

"नहीं, आप ज़रूर रहेंगे।" वह ऐसे अवसरो पर तुनकती थी और लगता था, उसे अचानक मुझ पर अधिकार प्राप्त हो गया है।

अपने-आपको सौंपते जाने के आनन्द में डूबते हुए मैंने कहा, "मैं सच कहता हूं। इस बार माफ करो। अबसे बराबर साफ रहूंगा।"

"तो इसमें माफी की क्या बात है ?" उसके स्वर में कुछ आवेश था। फिर मुझे सहमा हुआ देख अपने स्वर को गिराती हुई बोली, "आप जब माफी मांगते हैं तो मुझे लगता है, आपने उठाकर मुझे दूर फेंक दिया है। बोलिए, माफी नहीं मांगेंगे।"

"नहीं मांगूंगा।" मैं स्वयं ही समझ नहीं पाया, यह मैं नाटक कर रहा

हूं या सचमुच।

"आप कुछ नहीं कर सकते।" उसने मुझे अपने हाथ से ढकेल दिया। मुझे अचानक लगा, क्या मैं इस लायक हूं? मगर मेरे मुख पर रोष नहीं शायद ग्लानि के चिह्न थे। तब वह और करीब आई। अपने वक्षों को मेरी पीठ से सटा दिया और ठुड्डी पर हाथ फेरती हुई बोली, "नाराज़ मत होइए। आप ऐसा क्यों करते हैं?"

मैं इनकार नहीं कर सकता था। ऊर्मि मेरी तकलीफ पहचानती थी। वह मेरा मुंह अपनी तरफ कर अपने होंठ बढ़ा देती थी। दूर से वे मुझे जूठे होंठ लगते थे, ढाढस के। मगर अपने होंठ उन पर रखते हुए और ऊर्मि की गरदन में अपना हाथ डालते हुए मुझे लगता था उसमें बनाव नहीं है और मैंने उसे दु:ख पहुंचाया है।

ब्लाउज़ के बटन खोलते हुए और पेटीकोट खिसकाते हुए उसके प्रति करुणा उपजने लगती थी। उसने अपना सब-कुछ तो मुझे दे दिया। मुझे अपनी ओर खींचते हुए वह प्रश्न करती थी, 'मुझे छोड़ोगे तो कभी नहीं?' और उसका प्रश्न मेरे अन्दर उछलकर बाहर आ जाता था, जैसे यह मेरा अपना ही सवाल हो। और मैं आंख मूंदकर अन्धकार में छलांग लगाकर उत्तर देता था, 'कभी नहीं।'

मैंने अपने जूते के फीते बांधते हुए कहा, "मैं चलता हूं। कल आऊंगा।"

"नहीं। मैं भी साथ चलूंगी।" उसने मचलते हुए कहा। स्त्रियां जब किशोरियों की तरह मचलती हैं, तो उनकी शोभा गड़बड़ा जाती है और वयस्क सौंदर्य से अभ्यस्त नज़र किरकिरा जाती है। मगर मैं ऐसे मौकों पर अपनी झुंझलाहट छिपा जाता हूं।

"नहीं, मैं कहीं और जा रहा हूं।"

"कहां जा रहे हैं? किसी और के पास जा रहे होंगे।" वह मुस्कराई और मुझे भद्दी लगी।

"सच कहिए, आप किसी और के पास नहीं जाते?" उसने मेरी आस्तीन पकड़ते हुए कहा।

"नहीं, मैं कहीं नहीं जाता।" मैंने अपनी आस्तीन छुड़ा रूमाल से

अपना मुंह पोंछते हुए कहा।

"तो इस तरह बेसब्र क्यों हो रहे हैं ?" मैंने देखा, वह झुंझलाई हुई थी।

"सचमुच ऊर्मि ! मैं कहीं नहीं जाता।" मैंने उसकी कलाई पकड़ते हुए कहा। उसका मुख क्षण-भर को दमका और खुशी वापस आ गई।

"इसके पहले आपने किसी स्त्री से प्रेम नहीं किया ?"

"नहीं। सच !" मुझे भी अब इस बातचीत में रस आने लगा था।

"आप झूठ बोल रहे हैं।" वह फिर तुनकी।

"नहीं, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं।"

"कसम खाइए।" उसने अविश्वास से मुझे देखते हुए कहा।

"कसम खाता हूं।"

"किसकी ?"

"तुम्हारी।"

वह मेरे और नज़दीक आ गई और मुझसे सटती हुई बोली, "मगर आपके बारे में तो बड़ी-बड़ी खबरें सुनते हैं।"

"क्या खबरें ?" अपने बारे में किंवदन्तियां सुनने का मोह तब और भी बढ़ जाता है जब हमारी प्रेमिका हमारी प्रसिद्धि का बखान करे। इससे उम्दा चापलूसी नहीं हो सकती।

"यही कि आपने कई लड़कियों को बिगाड़ा है।"

"कौन कहता है ?" मैंने झूठमूठ का रोष पैदा करते हुए कहा।

"सुनते हैं। अब ये कैसे बताएं कि कौन कहता है।"

"कौन हैं वे लड़कियां ?" मैंने उसे जानबूझकर अपने से परे हटाते हुए कहा।

"नाम नहीं मालूम। मगर सुनते हैं, एक लड़की से काफी दिनों तक आपका सम्बन्ध रहा। बात सबको मालूम हो गई थी, यहां तक कि आप लोगों ने विवाह का फैसला भी कर लिया था। फिर···।"

"फिर ?" मुझे उसकी कहानी में, क्योंकि वह मेरे बारे में थी, आनन्द आने लगा था।

"फिर आपने उसे छोड़ दिया।"

"ओह ! वह लड़की ?" मैंने उस 'झूठी लड़की' के होने पर विश्वास

कर लिया था।

"तुम उस लड़की की बात करती हो !"

"तो थी वह ?" उसने हैरानी के साथ मुझे देखा।

"बिलकुल थी।" उसके चेहरे पर और भी हैरानी थी।

"ज़रा बैठकर बात कीजिए।" वह सोफे पर मेरे नज़दीक बैठ गई। उसने गुलाबी साड़ी पर गुलाबी ही स्वेटर पहन रखा था।

"मैं चाय ले आती हूं।" अनिच्छा से उठते हुए उसने कहा, "इतनी देर में तो वह चली नहीं जाएंगी।"

"कौन ?"

"वही, जो थीं और जो आपका इन्तज़ार कर रही हैं।" उसके मुख पर खीझ थी।

चाय आ गई तो वह चाय में मशगूल हो गई। फिर उससे उबरकर प्याली मेरी ओर बढ़ाकर उसने कहा, "तो आपने सचमुच उन्हें छोड़ दिया था ?"

"सचमुच। क्या मैं तुमसे झूठ कहूंगा ?"

वह अपने ही गढ़े झूठ में गिरफ्तार हो गई थी और अब अपने ही झूठ पर अविश्वास करना चाहती थी।

"तो आप छोड़ भी सकते हैं ?" मैं नहीं जानता उसके चेहरे पर बनावटी परेशानी थी या असल, मगर मैं किसी को छोड़ सकता हूं, अकेला रह सकता हूं—यह खयाल मुझे शक्तिशाली बना देता है, अपनी ही नज़र में मैं ऊंचा हो जाता हूं और मैं अभी जिस स्त्री के सामने घुटने टेक रहा था, वह मुझे तुच्छ और अपने से छोटी जान पड़ती है।

"हां।" मैंने चुटकी लेते हुए छोटा-सा उत्तर दिया।

"मगर आपने तो कहा था कि आप मुझे नहीं छोड़ेंगे।"

"तुम्हारी बात और है।" मैंने चाय में डूबे-ही-डूबे जवाब दिया। सिर उठाया तो वह मुझे मुग्ध निहार रही थी।

मैंने चाय मेज़ पर रख दी और उसका सिर अपनी गोद में रख दुलारने लगा। मुझे सचमुच ज़रूर बाहर जाना था। मगर इस एक क्षण के लिए समूचा कर्मरत संसार रुक सकता है। जंगल में खिले हुए एक भटक-

टइये के पीले फूल को तोड़ने के लिए मैं ज़ंजीर खींचकर ट्रेन रोक देता हूं और चल देता हूं। ट्रेन रुक सकती है, भटकटइये का वह फूल नहीं रुक सकता। अगर मैंने नहीं तोड़ा, तो वह गुज़र जाएगा।

मैं जानता हूं, ऊर्मि को मेरा यही स्वभाव सबसे प्रिय लगा था। मैं उसके लिए अपने को स्थगित कर सकता, ज़ंजीर खींच सकता हूं—इस एक बात पर वह सब बातों को तोल देती थी।

"जरा इसे बांध दीजिए।" उसने अपनी ब्रेसरी का स्ट्रिप मेरे हाथों में थमाते हुए कहा। वह दर्पण के सामने थी और मैं उसके पीछे। उसके पीले केश मुलायम, नंगे कंधों पर थे और उसने अभी साड़ी भी नहीं पहनी थी। सिर्फ एक पेटीकोट शरीर पर था।

मुझे किसी को ड्रैस करते देखने का अभ्यास नहीं। मगर ऊर्मि को सजते-धजते मैं चाव से देखा करता। वह किस तरह कपड़े चुनती है, किस तरह बालों को सुखाती है, किस तरह चेहरे पर स्नो लगाती है, किस तरह अपनी गोरी पिंडलियों तक अपने को नंगा कर जांघिया पहनती है और फिर किस तरह संवर चुकने के बाद अपनी नरम लाल हथेली में इलायची का एक दाना लेकर मेरी तरफ बढ़ाती है और एक अपने दांत के नीचे दबाकर कुतरने लगती है—इस सबमें एक अनोखा सुख मिलता था।

"ज़रा वह साड़ी उठा लाइए।" मैं बिस्तर पर तह कर रखी हुई साड़ी उठा लाया।

"यह कैसी रहेगी?"

"अच्छी रहेगी।"

"और यह चंदेरी?"

"हां, वह ज़्यादा अच्छी रहेगी।" असल में मैं उस समय ठीक सामने आईने में अपने को देख रहा था और सोच रहा था, मैं भद्दा हूं नहीं, केवल ऊर्मि के पार्श्व में फीका पड़ने लगता हूं।

"आपको कोई दिलचस्पी नहीं।" उसने दोनों ही साड़ियां फेंक दीं।

"क्या करती हो?" मैं साड़ियां उठाने लगा।

"आपका कोई मतलब ही नहीं। मैं यह पहनूं या वह। आप सेल्फ-

सेंटर्ड हैं। आईने में भी आप मुझे नहीं, अपने-आपको देख रहे थे। मैं देख रही थी।"

मुझे सकपकाया हुआ देख वह मुसकराई।

"आप सचमुच बहुत मतलबी हैं। आप कभी मेरी तो दूर, मेरी साड़ी तक की तारीफ नहीं करते।" फिर अपने वक्ष को मेरे सीने से सटाती हुई बोली, "आपकी वाली पहन लूं?"

मुझे उसने हतप्रभ कर दिया बल्कि जैसे नींद से जगा दिया। मुझे लगा, ऊर्मि के मन में एक कोना है जिसमें मेरे लिए अभी से शिकायत पैदा हो सकती है। मगर मैं हूं भी तो मतलबी। मैं सचमुच तो अपने को केन्द्र मानकर चलता हूं, स्वयं को धुरी बनाकर शुरू करता हूं। मैं उसकी कल्पना हमेशा अपने संदर्भ में क्यों करता हूं? मैं हमेशा उससे सुख निचोड़ लेना चाहता हूं। और मेरा यह सुख दो-ढाई मिनट से अधिक है क्या? या यह केवल एक हलचल है, जिसे ऊर्मि अपने अन्दर उतार लेती है और फिर अपने को धो-पोंछकर अगली हलचल की प्रतीक्षा करने लगती है। एक हलचल से दूसरी हलचल के बीच अगर वह बनी रहती है तो इसका यश मुझे नहीं। वह अपने प्रयत्न से बनी रहती है और अपने को बनाये रखने के लिए उसे एक-एक घड़ी कितनी कोशिश करनी पड़ती है। ऊर्मि सचमुच सहिष्णु है। यह कष्ट उसके चेहरे पर नहीं आता। यह सहिष्णुता मुझे छलती है, उससे उदासीन करती है।

वह सज-संवरकर तन्मय मुझे देख रही थी।

"क्या सोच रहे हैं?" उसने मुझे पढ़ने की कोशिश की। मैंने देखा, वह हंस रही थी। "बुरा मान गये?"

उसने मेरा ठंडा हाथ अपने हाथ में ले लिया और अपनी हथेली से सहला रही थी।

जब वह देर तक मेरा हाथ सहलाती रही तो मुझे हल्के-हल्के गुस्सा आने लगा। मेरी इच्छा हुई, मैं झटके के साथ अपना हाथ छुड़ा लूं। मैं बार-बार गिर-गिरकर छोटा हो जाता हूं और ऊर्मि हर बार ऊपर उठकर बड़ी हो जाती है।

"मैं मज़ाक करूंगी तब भी आप बुरा मानेंगे।" उसका चेहरा फीका

पड़ गया था।

मेरी आंखों की कठोरता से सहमती हुई वह मेरे पास आई।

"मुझे प्यार नहीं करेंगे?"

"मेरा जूड़ा संवार दीजिए।" वह मुड़ती हुई बोली। और दिन वह चोटी करती थी, लेकिन आज उसने जूड़ा बांध रखा था। मैंने उसके ढीले-ढाले जूड़े को अपने हाथों में ले लिया।

'ऊर्मि के प्रति मेरा कर्त्तव्य है। मुझे यह नहीं भूलना चाहिए।' मैं यह सोच रहा था और उसका जूड़ा ठीक कर रहा था।

सूखे बालों की भी एक महक होती है और स्त्री की देह की भी एक गंध होती है। देर तक खड़े रहें तो नशा आने लगता है, गन्ध बसने लगती है। यह गंध ही सब-कुछ है।

पालम हवाई अड्डे पर पत्थर की एक बेंच पर बैठकर हवाई जहाज़ों के पहुंचने और प्रस्थान करने के एनाउन्समेंट सुनते रहना मुझे सुखकर लगता है। मैं अकेला भी सारी दोपहर और शाम गुज़ार सकता हूं। 'टेक ऑफ' के पहले लुढ़कता हुआ हवाई जहाज़ जब रन-वे तक पहुंचता है, मुझे लगता है मुझसे कुछ बिछुड़ रहा है और उसके बाद देर तक घड़घड़ाने के बाद जब वह कुछ दूर पर पंख मारता-सा दिखाई देता है, मुझे अकेलेपन का अनुभव होता है, अपने छूट जाने का अहसास होता है। मगर थोड़ी देर में सब पूर्ववत् हो जाता है।

एयर इण्डिया के बाद बी० ओ० ए० सी० का या बी० ओ० ए० सी० के बाद के० एल० एम० का जहाज़ तैयार होता दिखाई पड़ता है, मिस्त्री मरम्मत या जांच-परख कर दूर हट जाते हैं, यात्रियों का एक गुच्छा एयर बैग लिए हुए, हाथ हिलाता हुआ जहाज़ की ओर जाता है। फिर एक घड़-घड़ाहट होती है और फिर कुछ दूर पर खेतों पर कुछ उड़ने लगता है।

उतरने वाले जहाज़ों से लोग आते भी हैं तो कितने तरीके के साथ, कितने विश्वस्त। जैसे पुरानी दुनिया में ही आ रहे हों मगर कुछ सीखकर। किसी के भी साथ वहां बैठकर अकेला लगता है।

वह मेरे नज़दीक बैठी हुई थी। और समीप बैठी हुई वह कुछ देख नहीं

रही है—इस सबके पार कुछ सोच रही है। शायद वह एक मनगढ़न्त चौखटा बनाकर अपनी तसवीर उसमें जड़ रही है। हो सकता है, मेरी तसवीर।

वह मेरे बारे में सोचती है, कल्पनाएं करती है, मंसूबे बनाती है, मुझे और अपने को लेकर बुनती है—यह सोचते हुए मेरे मन में फिर आत्मीयता पैदा हुई जो अभी कुछ देर पहले उठकर जैसे रन-वे की ओर चली गई थी।

वह ऊबी हुई थी और जब मैंने उसके कन्धे पर अपनी उंगलियां फिराईं तब उसने खीझकर मुझे देखा। फिर उसने अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

"थक गईं ?" हाथ मैंने उसके कन्धे पर रखे-ही-रखे पूछा। मगर वह तब भी चुप रही।

"बात-बात में तुम बच्चों की तरह रूठ जाती हो। इस तरह कैसे चलेगा ?" मेरी अंगुलियां झनझनाने लगी थीं और मुझे लगा मुझमें कुछ झुंझला रहा है और मैं बिना कहे नहीं रह सकता।

उसने अपनी पीठ से मेरा हाथ हटा दिया था और मैं कुछ कहूं इसके पहले ही वह कुछ कहने-कहने को हुई। उसके होंठ कुछ हिलने को हुए, मगर अचानक मेरी ओर देखा और रुक गई। उसने कुछ कह दिया होता तो बेहतर था। मगर इसके बजाय वह मुस्कराई। और मुझे तत्पल लगा, यह छल है। अगर मेरे और उसके सम्बन्धों में यह मुस्कान घुलती गई तो झूठ बढ़ता जाएगा। मैं इस मुस्कान वाले चेहरे से प्यार नहीं कर सकता।

वह उठ खड़ी हुई थी। उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया था। जब आसपास चार-पांच लोग देख रहे हों तो उसे यह सब करना और भी अच्छा लगता था। ऐसे वक्त में वह अपनी अंगुलियां मेरी अंगुलियों में उलझा देती थी। वह मेरे और नजदीक हो लेती थी और एकाध देखने वाले पर बिछलती हुई नज़र डाल मुझसे और सट जाती थी। उसके विश्वास को दुहराता हुआ मैं उसे अपने और पास ले लेता था।

मैं कह तो दूं। मगर क्या यह बात कहने की है ? क्या मैं सिर्फ ऊर्मि से यह कहूं कि तुम झूठी हो। उस पर तो मैं झूठ का दावा कर सकता हूं। मगर क्या उसे मेरे उस छल की गंध नहीं होगी, समय-समय कलह से बचने

के लिए मैं जिसका उपयोग करता हूं ?

ऊर्मि मुझसे छोटी नहीं है, बराबर है। मैं कुछ आहत हुआ। मगर उसने मेरा हाथ कुछ दबाया जैसे मुझसे क्षमा-याचना कर रही हो।

"बैठे ही रहेंगे ?"

"चलें ?"

"नहीं।"

"तब ?" मैंने आंख उठाकर उसे देखा।

"चाय पीएंगे ?"

हवाई अड्डे की बस एक ही चीज़ उसे पसन्द थी। रेस्तरां। मुझे खुद भी वह जगह बढ़िया लगती थी। उसमें एक अनासक्तता थी। और जगहें लोगों के होने या न होने से खूबसूरत या भद्दी लगती हैं। मगर पालम के साथ यह बात न थी।

बीचोबीच की मेज़ पर बैठकर मीनू देखती हुई ऊर्मि जब आर्डर करती तब उसके अन्दर का अभिजात जाग उठता था। बैरे को देखते ही बिलकुल आत्म-सजग हो जाती और इस तरह आर्डर करती कि न केवल बैरा वल्कि मैं स्वयं उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। अपने शरीर की बनावट के अलावा वह अपने अभिजात ढंग से भी पड़ोस के पुरुषों और स्त्रियों की निगाह खींच लेती।

विस्कुट का एक टुकड़ा कुतरते हुए टी-पॉट उसने मेरी ओर खिसका दिया और कहा, "चाय बनाइए।" वह बिलकुल सजग हो गई थी।

"इधर दीजिए। चाय बनानी भी नहीं आती। बिलकुल गंवार हैं।" उसके मुंह से अपने लिए 'गंवार' सुनकर मैंने पुलक का अनुभव किया। मैं हूं भी गंवार ऊर्मि की तुलना में। उसका सलीका, उसके पेश आने के ढंग, सब इतने मंजे हुए हैं कि मैं एकदम फीका पड़ने लगता हूं।

मगर मैंने देखा, इस समय ऊर्मि फीकी पड़ रही थी। कोने की मेज़ पर एक एयर-होस्टेस एक नवयुवक के साथ बैठी हुई अपने नाखून घिस रही थी। उसमें कुछ ऐसी अदा थी कि मेरे मन में किसी छोटी-बड़ी रियासत की नवाबज़ादी का खयाल आए बिना नहीं रह सका। वह खामोशी के साथ सुन रही थी और अपना नख-शृंगार कर रही थी और नवयुवक कभी

गिड़गिड़ाकर और कभी विश्वास के साथ कुछ इस तरह बात कर रहा था कि मुझे लगा, वह प्रेम-निवेदन भी कर रहा है और उसे फुसला भी रहा है।

"क्या देख रहे हैं ?" ऊर्मि चाय ढालती-ढालती रुक गई।

"नहीं, कुछ नहीं।"

"आपकी आदत है।"

"क्या आदत है ?"

"जहां भी लड़की दिखे, देखना।"

"नहीं, यह बात नहीं। असल में मैं उसकी साड़ी देख रहा हूं।"

"क्या खासियत है उसकी साड़ी में ?"

"खासियत कुछ भी नहीं। उसका शरीर ही ऐसा है कि कोई भी साड़ी उस पर फबेगी।"

"आपको ज़्यादा जानकारी है उसके शरीर की ?"

"उसके शरीर की न हो. तुम्हारे शरीर की तो है। एक समझ में आ जाने पर हरेक समझ में आ जाती है।"

"क्या बात करते हैं ?" उसने झिड़कते हुए प्याली मेरी ओर बढ़ा दी और अपना पल्लू ठीक करने लगी।

ऊर्मि की झिड़की कोने में जाकर पड़ी और एयर-होस्टेस ने नज़र उठाकर उसे देखा। उससे आंख मिलाते हुए ऊर्मि ने चम्मच में थोड़ी-सी चाय ली और चम्मच मेरे होंठ की ओर बढ़ा दिया, फिर हंसी, चाय प्याली में लुढ़का दी और विजेता की-सी दृष्टि से एयर-होस्टेस को देखा। उसके पास बैठा लड़का अपनी टाई-पिन से खेल रहा था और शायद इन्तज़ार में था कि बात कुछ आगे बढ़े। मगर वह फिर अपने नाखून मांजने में लग गई थी।

"अगर वह राजी हो जाए तो आप उसे प्रेम करने लगेंगे ?"

"क्या हर्ज है ?"

"हर्ज तो कुछ नहीं। मगर दो-दो से···।"

"दो से क्यों ? एक आदमी कई स्त्रियों से प्रेम कर सकता है।"

"कैसे कर सकता है ? एक से प्रेम करेगा, बाकी से डिबांचरी।"

"यही समझ लो।"

"तो फिर आप कीजिए।"

"वक्त आने दो, करूंगा।"

"आप सचमुच करेंगे ?"

"तुम ऐसा सोचती हो ?"

"सोचती तो नहीं, मगर आपका क्या विश्वास। एक मामूली-सी नीली साड़ी देखकर फिसल गए।"

"मैं क्यों फिसलूंगा ?"

मैंने बेयरे से चाय का पानी फिर से ले आने के लिए कह दिया और साथ ही कुछ पेस्ट्रियां भी। मुझे मालूम था पेस्ट्रियां ऊर्मि को अच्छी लगती हैं। मगर उसने जानबूझकर उनका आर्डर नहीं दिया था। शायद वह जानना चाहती थी उसे जो चीज़ें पसन्द हैं, मुझे स्मरण रहती हैं या नहीं।

"स्त्रियां इतनी जल्दी नहीं फिसलतीं।" उसने कहा, "वे समझ-बूझकर ही आगे बढ़ती हैं। वे इतनी नादान नहीं होतीं जितना आप लोग समझते हैं। वे आखिरी कदम की कल्पना कर ही पहला उठाती हैं।"

"तो तुमने पहले मुझे ठोंक-बजा लिया था ?"

"बिलकुल।"

"तो मुझमें क्या देखकर आकृष्ट हुई थीं ?"

"आप अपनी तारीफ करवाना चाहते हैं ?"

"नहीं, सचमुच, बताओ, तुमने क्या देखा था ?"

"कुछ भी नहीं।"

"तुम मेरे मैनर्स से इम्प्रैस हुई होगी ?"

"मैनर्स ! आप और मैनर्स ? अगर मैंने मैनर्स पर ध्यान दिया होता तब तो आपके पास दो मिनट भी नहीं ठहर सकती थी।"

"तो तुम मुझे गंवार समझती हो ?"

"नहीं। गंवार नहीं, मगर कल्चर्ड भी नहीं।"

"तो फिर क्या देखकर आई थीं ?"

"यही तो नहीं मालूम।"

"मगर तुमने तो कहा था, तुमने परख लिया था।"

"वह तो बाद की बात है।"

ज़रा मुड़कर मैंने देखा इस बार लड़का चुप था और एयर-होस्टेस बातें

कर रही थी। उसकी चिड़चिड़ाई हुई मुखाकृति मुझे अच्छी लगी। वह तेज़ बोल रही थी और लड़का सिर नीचे किए हुए कुंजी के गुच्छे से खेल रहा था। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि पास खड़ा बेयरा लापरवाही का स्वांग किये हुए उनकी बातें सुन रहा है।

"वह उसे डांट रही है।"

"क्यों ?" ऊर्मि ने विस्मय का अभिनय करते हुए कहा।

"उसने कोई गुस्ताखी की होगी।"

"कैसी गुस्ताखी ?"

"कहा होगा, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।"

"तो इसमें क्या गुस्ताखी ?"

"यही तो। यही तो सबसे बड़ी बेअदबी है। किसी के बिना न रह सकने की बात कहना ही चिड़चिड़ाने वाली बात है।"

"तो आप उस पर हंस क्यों रहे हैं ? आप उसकी जगह होते तो आप भी यही करते।"

"कभी नहीं।"

"तो आप क्या करते ?"

"कह देता, चली जाओ। गेट आउट।" मैंने ऊर्मि को उकसाने के लिए कहा।

"अच्छा देखेंगे।" उसकी आंखें चमक उठीं और वह चमक मुझमें एक अनजाना भय पैदा कर गायब हो गई।

सामने बैठी हुई ऊर्मि मुझे आभास की तरह लगी। मुझे लगा वह वास्तविक नहीं है, केवल एक छाया है। और अगर मैंने उसे पकड़ने की कोशिश की तो वह खो जाएगी। उसके खो जाने के खयाल से मुझे घबराहट हुई।

वह हंसती हुई बैठी थी और बिल के लिए बेयरे को इशारा करने को ही थी कि मैंने कहा, "रुको।" मैं चाहता था वह मेरे साथ देर तक बैठी रहे और मैं उसकी उष्णता में अपने विश्वास को फिर से प्राप्त कर सकूं।"

"अब तो वह चली गई। अब क्यों बैठे हैं ?" मगर मेरा ध्यान उसकी ओर नहीं था। एयर-होस्टेस उठकर कब चली गई, मुझे पता भी नहीं।

"मैं उसके लिए बैठा हूं ?"

"तो फिर किसके लिए बैठे हैं ?"

मैंने झुंझलाकर उसे देखा। ऊर्मि नासमझी के सवाल क्यों करती है ?

"सच बताइए। किसके लिए बैठे हैं ?" मेरी चिड़चिड़ाहट बढ़ती जा रही थी, "नहीं बताएंगे ?"

मैंने गुस्से से उसे देखा और ऊर्मि सहम गई। एक मिनट में उसने सब-कुछ समझ लिया और सिर नीचा कर लिया।

कुछ देर चुप रहकर उसने मुझसे कहा, "मुझे क्षमा कर दीजिए।"

बिल अदा कर मैं उठ खड़ा हुआ था। वह सट-सटकर मुझसे चल रही थी।

"बोलिए, क्षमा कर देंगे ?"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। मैं चाह रहा था, वह लगातार मुझसे क्षमाएं मांगती रहे और मैं इसी तरह साधे रहूं।

"मुझे माफ भी नहीं करेंगे।" मैंने पाया ऊर्मि का स्वर भर्राया हुआ था, "मैं हूं ही ऐसी।" उसने भर्राये हुए ही कहा।

ऊर्मि इतनी भावुक है और रो भी सकती है, मैं नहीं जानता था। उबलता हुआ मेरा बुखार उतरने लगा और ऊर्मि फिर वास्तविक लगने लगी।

"अगर मैं माफ नहीं करूं तो क्या करोगी ?" मैंने सब-कुछ को परिहास के धरातल पर उतारने की कोशिश करते हुए कहा।

"आप सचमुच नहीं करेंगे ?" उसने ठिठकते हुए कहा।

"क्या स्कूली लड़कियों की तरह तब से माफी मांगे जा रही हो।"

मेरी झिड़की जाकर उस पर ठंडे पानी की बौछार की तरह पड़ी। हवाई जहाज़ के प्रस्थान के अनाउंसमेंट को चीरते हुए मैं और वह बाहर आए तो यात्रियों का एक गुच्छा बी० ओ० ए० सी० के हवाई जहाज़ की ओर जा रहा था। पत्थर की बेंच पर बैठा हुआ मैं कुछ दूर पर पंख मारते हुए हवाई जहाज़ को देख रहा था और वह मेरे कंधे पर सिर रखकर सच-मुच ही सो गई थी।

अलग

उसका अफसर उसकी उपेक्षा कर बगल से निकल गया। उसने अड़ोस-पड़ोस में देखा—यह जानने के इरादे से कि और किसी ने तो यह नहीं देखा।

सब लोग मेज़पर सिर झुकाए अपने काम में या अपने भीतरी हिसाब में मशगूल थे। उसने राहत की सांस ली।

उसने भी औरों की तरह सिर झुका लिया और काम में लग जाने का स्वांग किया। मगर यह स्वांग अपने-आपके साथ था जो अधिक देर चला नहीं। ट्रे में रखी फाइलें जीभ लपलपाती-सी नज़र आईं। अगर वह उनकी ओर बढ़ा तो वे उसे चाट जाएंगी।

वह अपनी जगह से उठा और उसके पैर पेशाबघर की ओर मुड़ गए। हालांकि पेशाब उसे महसूस हो नहीं रहा था। पेशाबघर में खड़े-खड़े उसने पेशाब करने का प्रयत्न किया और रुक-रुककर गिरती हुई पतली-सी धार को देखता रहा। फिर यह सिलसिला भी चुक गया।

"यही एक जगह है जहां कुछ मुक्ति मिलती है।" पतलून के बटन बंद करता हुआ वह बुदबुदाया। उसे अपने स्कूल के दिनों की याद आई जब दिमाग पर ज़ोर पड़ते ही वह मास्टर साहब से अंगुली दिखाकर पेशाब की छुट्टी मांग लिया करता था और पेशाबघर में आकर बड़ी देर तक पेशाब

करने का नाटक किया करता था। मज़े की बात यह है कि सब-कुछ खत्म हो जाता है, यह पेशाब करने का सिलसिला कभी खत्म नहीं होता।

हाथ में ज़रा-सा पानी लेकर हाथ धोते और रूमाल से हाथ पोंछते हुए उसने देखा —खिड़की के बाहर सामने की इमारत की मुंडेर पर सफेद रंग की एक बिल्ली अपना बदन सुखा रही थी। वह पहले अपना शरीर सिकोड़ पैरों-पैरों चलती थी, फिर अपना शरीर फुलाती थी। ज्यों-ज्यों शरीर फूलता था, अकड़ी, ऊपर उठी दुम ढीली होकर नीचे गिरती जाती थी। यह बदन नहीं सुखा रही है, पेशाबघर से निकलता हुआ वह बुदबुदाया, बिल्ले को लुभाने का रिहर्सल कर रही है। हरामज़ादी!

अपनी जगह पर वह चोर की तरह आकर बैठ गया। मगर किसी ने उस पर गौर नहीं किया। उसके बिलकुल समीप बैठा हुआ सहयोगी धुआं उड़ा रहा था और उसके दूसरी तरफ स्टेनो लड़की अब भी टाइप किए जा रही है। वह बार-बार शार्टहैंड बुक में लिए अपने नोट्स पर झुक रही थी। मगर उसके चेहरे पर तनाव कहीं नहीं था। नौकरी पर आने के पहले ही ऐसी लड़कियां उस्ताद हो जाती हैं। वह उसकी छातियों पर गौर कर रहा था, जो भारी और ढली हुई थीं। वह हर आदमी के साथ जा सकती थी। कभी कोई उसे अपने स्कूटर पर बिठा ले जाता, कभी वह किसी के साथ टैक्सी पर दिखाई पड़ती। अफसर के, जिसे उसको छोड़ सब लोग साहब कहते, लिए तो वह सब्ज़ी की तरह थी। और दरअसल वह थी भी सब्ज़ी, एकदम बासी। अच्छा हुआ मैंने उसे कभी लिफ्ट नहीं दी। टाइप करते हुए उसकी छातियां की-बोर्ड पर गिरने-पड़ने लगती हैं। चाहे तो वह अपनी अंगुलियों के बजाय अपनी छातियों से टाइप कर सकती है। वह अपने खयाल पर मुसकराया और मन-ही-मन एक बार फिर दुहराया, अच्छा हुआ जो मैं उसके साथ कभी नहीं गया, सिर्फ एक बार को छोड़, जब सबके चले जाने पर भी काम का बहाना कर मैं रुक गया था। लड़की तब भी टाइप किए जा रही थी। जब सारे कागज़ टाइप हो गए तब वह उठी और उसे काम पर लगा देख कुछ हैरानी के साथ उसके नज़दीक आकर खड़ी हो गई।

"अभी खत्म नहीं हुआ?"

"हुआ नहीं। पर अब चलूंगा। सारा बोझ मुझ पर डाल दिया जाता है।" उसने गुस्से और ग्लानि का नाटक रचते हुए कहा, "हमेशा लायक आदमी मारा जाता है। नालायकों का बोझ भी उसे ढोना पड़ता है।" ऐसा कहकर उसने आसपास की खाली कुर्सियों को हिकारत की नज़र से देखा, जिन पर, उसकी राय में, आदमी नहीं मेंढक बैठते थे।

उसके बाद यह जानने के लिए कि इसका लड़की पर क्या असर हुआ, उसने उसकी आंखों में झांका। मगर लड़की पहले की ही तरह निर्लिप्त थी। बोदी है। उसने मन-ही-मन सोचा। उस पर बात देर से कारगर होती है।

उसके साथ बाहर आते हुए वह सारा समय टेढ़ी-मेढ़ी भाषा में अपने सहयोगियों की इस तरह बुराई करता रहा कि यह भी साबित हो जाए कि उसके साथी नालायक हैं और यह भी कि वे उसकी काबिलियत से जलते हैं और यह भी कि वह इन पचड़ों में पड़ता नहीं है—यह तो वह उसे यों ही बताए दे रहा है। उसने यह पता करने की कोशिश नहीं की कि उसकी बातों का इस बार लड़की पर क्या असर हुआ, क्योंकि उसे भय हुआ कि अगर लड़की फिर निर्लिप्त दिखी तो वह हताश हो जाएगा।

सड़क पर पहुंचते-पहुंचते जब उनके काम की निन्दा चुक गई तब वह क्षण-भर को चुप हो गया। मगर तुरन्त यह अनुभव कर कि ऐसे मौकों पर चुप होना बने-बनाये खेल को बिगाड़ना होता है, उसने यह सिलसिला फिर पकड़ लिया। इस बार उसने दूसरी तरकीब आज़माई।

उसने इशारों में कहना चाहा कि वे सब लूट-पाट के लोग हैं और अगर वह उनसे बचकर नहीं रही तो वे सब मिलकर उसकी धज्जियां उड़ा देंगे।

"मुश्किल यह है कि सारा वक्त गिरे हुए लोगों से घिरा होना है। हर आदमी की निगाह में पाप है।" उसने अपने वाक्-प्रवाह पर खुश होते हुए कहा, "हर आदमी दूसरे आदमी से सौदा करना चाहता है। औरतों की और भी मुश्किल है।" वह अपनी बात पर आ रहा था। मगर एक तो भीड़ थी, दूसरे उसे अचानक सुनाई पड़ा, "पटा ले, पटा ले।" उसने चौंक-कर पीछे देखा। जब कोई पकड़ नहीं आया तब वह अपने वहम पर शर्मिन्दा हुआ और अपना आत्मविश्वास फिर से इकट्ठा करने लगा। मगर दो कदम

आगे बढ़ते ही फिर आवाज़ सुनाई दी—इस बार बगल से—"पटा ले, पटा ले।" ज़रूर कोई शरारत कर रहा है, दफ्तर का ही कोई होना चाहिए।

उसने शक्तिशाली व्यक्ति की तरह, चारों तरफ निगाह फिराई। मगर कोई नहीं मिला। अपराधी के भाग जाने से उसे अपनी शक्ति का अहसास हुआ। मगर जब तक वह अपने बलशाली होने के अनुभव को पक्का करे तब तक फिर पड़ोस से ही उसे सुनाई पड़ा, "पटा ले, पटा ले।" उसकी पकड़ ढीली पड़ गई और अचानक बिना कुछ सोचे हुए लड़की को पीछे छोड़, वह बगल से गुज़रते हुए रेले में समा गया। भीड़ में खोते हुए एक बार उसने लड़की की तरफ देखा। वह ज़रूर उसे ढूंढ़ रही होगी। मगर ऐसा कुछ भी नहीं था। वह उसी तरह चली जा रही थी।

"आदमी से अधिक टुच्चा कोई नहीं।" उसे फिर एक नया खयाल मिला, "कोई किसी को किसी के साथ नहीं देख सकता। कम-से-कम मुझमें यह बात तो नहीं।" उसे सन्तोष हुआ कि वह औरों से अलग है। और सड़क पर गुज़रते हुए जोड़ों को देखते हुए उसने प्रसन्नता का अनुभव किया।

दूसरे दिन दफ्तर आकर उसने सोचा, मुझे लड़की से माफी मांगनी चाहिए। फिर वह इन्तजार करता रहा कि लड़की उससे शिकायत करेगी, तब वह माफी मांगेगा। उसने सोचा, वह उससे कहेगी, आप तो कल चले ही गये! मगर लड़की हर दिन की तरह टाइप में लगी रही और हमेशा की तरह उसके चेहरे पर कोई तनाव न था।

उसकी तनावहीन मुखाकृति को देखता-देखता वह झुंझलाया।

"बोदी।" और उसे लगा वह भटक गया था। दरअसल वह बेवकूफ और बदशक्ल है। उसे अपनी वज़नी और झुकी हुई छातियों से टाइप करना चाहिए।

टाइप की आवाज़ बन्द हो गई थी। और उसने देखा, स्टेनो लड़की लंच करने उठकर चली गई थी। अफसर एक बार फिर उसकी मेज़ से गुज़रा और एक बार फिर उसने उसे उपेक्षा की नज़र से देखा।

"मिस्टर गोयल, आज लंच पर नहीं जा रहे हैं?" यह वाक्य हफ्ते में पांच दिन उसे सुनना पड़ता है। वह जानता था, उसे चिढ़ाने के लिए ही

यह सवाल किया जाता है।

और इसके पहले कि वह इसका जवाब दे, उसकी ओर के उत्तर की शक्ल में एक और फब्ती कस दी जाती, "मिस्टर गोयल हफ्ते में एक दिन लंच करते हैं—कोई ऐसी-वैसी जगह नहीं, 'मैडोना' में।"

"और बाकी दिन ?"

"बाकी दिन फाका कर 'मैडोना' का जुरमाना चुकाते हैं।"

ठहाके में उसे उड़ा दिया जाता था। मगर यह सच था कि हफ्ते में एक दिन वह 'मैडोना' में लंच करता था। और यह भी सच था कि बाकी दिन वह दोपहर का भोजन नहीं करता था।

दफ्तर की मेज़ पर बैठकर सूखी हुई चपाती और सूखे हुए आलू गले उतारने में उसे भुक्खड़पन नज़र आता था। मगर उससे भी घटिया लगता था, नुक्कड़ पर खड़े हो छोले-कुलचे खाना। नुक्कड़ की भीड़ उसे मक्खियों की तरह लगती थी।

पहले वह सोचा करता था कि इन लोगों की फबतियों का करारा जवाब दे, मगर फिर वह इस नतीजे पर पहुंचा कि ओछों के मुंह नहीं लगना चाहिए। इसलिए अब जब उससे यह सवाल किया जाता तो वह अपनी टाई से खेलने लगता या कॉलर मोड़ने लगता।

वक्त पड़ा हुआ था और खाली वक्त में सामने पड़ी हुई फाइलें पलटते हुए उसने व्यस्त होने की कोशिश की। लंच के बाद, वह जानता था, कोई काम नहीं करता। फाइलें इस मेज़ से उस मेज़ पर घूमती रहती हैं। सारा-का-सारा हॉल दबी ज़बान या खुलकर गप्पें हांकता है। ऐसे वक्त में, जब कोई काम न कर रहा हो, वह काम में मशगूल नज़र आता है। गप्पबाज़ी, चुहल, पतंगे लड़ाने से उसे नफरत थी।

"छुट्टियों में इस साल कहां जा रहे हैं, मिस्टर गोयल ?"

उसने अभ्यस्त आंखों से देखा, उससे फिर सवाल किया जा रहा है।

"दार्जिलिंग या श्रीनगर।" सवाल करने वाला मुस्कराया।

"मिस्टर गोयल इस साल स्विट्ज़रलैंड जा रहे हैं। उम्मीद है लौट-कर अकेले नहीं आयेंगे।"

"हो सकता है लौटकर ही न आएं।"

यह सही है। अगर उसका बस चले तो वह बाहर जाकर कभी वापस न आये। वह धीरे-धीरे इस नतीजे पर पहुंच गया था कि हिन्दुस्तान में लोग एक-दूसरे की जिन्दगी में घुसते हैं, दखल देते हैं। मगर बाहर जाने का मंसूबा महज़ मंसूबा ही बना हुआ था।

"मिस्टर गोयल के लिए स्विट्ज़रलैंड नहीं, इंगलैंड ठीक रहेगा। वहां लोग अपने पड़ोसियों से बात नहीं करते। मिस्टर गोयल को भी अपने पड़ोसियों से नफरत है।"

जिस आदमी ने यह बात कही थी, वह ठीक उसके सामने एक कुर्सी खींचकर बैठा हुआ था। सिर झुकाये-झुकाये उसने अनुभव करना शुरू किया कि उसके सामने आकर एक बैल बैठ गया है, जिसके मुंह से झाग निकल रहा है और अगर उसने रोका नहीं तो वह अपने सींगों से उसे मार बैठेगा।

अफसर लंच से वापस आकर अपने कमरे में घुस गया था। स्टेनो लड़की के टाइप का शोर कानों में पड़ने लगा था। मगर महफिल अभी बरखास्त नहीं हुई थी। चाय मंगाई जा रही थी। या पकौड़ों का आर्डर दिया जा रहा था। वह 'चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी कैन्टीन' की चाय नहीं पीता था, इसलिए चुप था।

"आपको साहब ने बुलाया है।"

'साहब' शब्द उसके कानों में खटका। मगर वह उठा और अपने अफसर के कमरे में गया।

"मिस्टर गोयल, तीन से सात फरवरी का प्रोग्राम तैयार कर भेज दीजिए, और अपनी तैयारी भी कर लीजिए।"

अफसर जब बाहर जाता था तो उसे उसके पी० ए० के बतौर जाना होता था। शुरू में नई जगहें देखने में दिलचस्पी होती थी। बाद में यह खयाल कि वह किसी का पी० ए० है, नौकर है, उसे परेशान करने लगा। अब अपने अफसर के साथ बाहर जाते हुए उसे कोफ्त होती थी। अगर दौरों के दौरान पी० ए० होने का कोई फायदा था, तो केवल इतना कि अरदली उससे डरते थे, हालांकि उसने उनके डर का कोई फायदा कभी नहीं उठाया।

अफसर के कमरे से निकलकर वह सीधे पेशाबघर गया। खिड़की के

बाहर उसने तलाश करना चाहा—क्या उस बिल्ली को कोई बिल्ला मिल गया ? मगर वहां धूप में बदन सुखाती बिल्ली नहीं थी, बल्कि छत पर चारपाई बिछाकर शतरंज खेलते दो बूढ़े थे।

मेज़ पर आकर वह अफसर के आदेश के मुताबिक पांच दिन का कार्य-क्रम बनाता रहा, तमाम फाइलें निकालकर ज़रूरी कागज़ात नत्थी करता रहा। जब पांच बज गये तब उसने सारे कागज़ और नकलें चपरासी को दे दीं कि वह टाइपिस्ट को दे दे और स्वयं उठ खड़ा हुआ।

और लोग अपना-अपना काम समाप्त कर बाहर जा चुके थे। वह इतमीनान से चलता हुआ बस-स्टैंड तक आया, पर वहां रुका नहीं, आगे निकल गया। इतनी लम्बी 'क्यू' में खड़ा होना उसके बस की बात नहीं थी।

लोगों का यह खयाल था कि वह बस पर नहीं जाता, टैक्सी, और आर-टैक्सी, नहीं तो स्कूटर से कम बात नहीं करता।

बहुत दूर जाकर वह फिर लौटा। अंधेरा हो आया था और क्यू भी समाप्त हो चुकी थी। सर्दी के कारण बसों में भीड़ कम हो चुकी थी।

बस-स्टॉप पर खड़े होकर उसने एक बार इधर-उधर देखा। जब कोई दिखा नहीं तब वह सामने से आती हुई बस पर चोर की तरह चढ़ गया। आधी से भी अधिक सीटें खाली थीं। मगर वह खाली सीट पर अकेले नहीं बैठना चाहता था। सारे दिन की घबराहट अचानक अस्थमा की तरह उभर रही थी। वह आगे बढ़कर आगे की एक सीट पर बैठ गया, जहां एक अपने में तन्मय स्त्री बैठी हुई थी।

उस स्त्री के करीब बैठकर उसने कुछ उष्णता और तसल्ली का अनुभव किया। थोड़ी देर में वह उससे और सट गया और उसका जिस्म स्त्री के जिस्म को छूने लगा। स्त्री के शरीर की गन्ध उसके दिमाग में समाने लगी। जब कई स्टाप पार कर बस एक जगह रुकी और स्त्री उतर गई तब उसे अपने बगल की जगह भयानक खाली लगी।

वह अंधेरे और कुहरे में गुज़रती हुई स्त्री को देखता रहा। सर्दी बढ़ गई थी। उसकी नाक और आंख में पानी था।

संकर

"सर्दी है।"

"हां, सर्दी है।" उसने मुड़ी-तुड़ी सिगरेट का कश लेते हुए इतने ज़ोर से कहा कि उसकी औरत भी सुन ले, जो ठण्डी पथरीली ज़मीन पर दरी बिछा बच्चों को तो रज़ाई में लपेटे हुए थी, मगर खुद, उसके बार-बार कहने के बावजूद खुले में बैठी थी—शरीर पर एक चादर-भर थी। "इतनी ठण्डी में चादर से कहीं काम चलता है! ऐसे में तो दो-दो रज़ाई भी ओढ़ लो तो कम है।"

चारों तरफ खुला था। ऊपर एक टीन-शेड था। हवा से, जो सनसनाती हुई चल रही थी, कोई बचाव नहीं था। नज़दीक-नज़दीक पच्चीस-तीस लोग पड़े हुए थे। यही वेटिंग रूम था। स्टेशन छोटा था। दिन में कई गाड़ियां गुज़रती थीं, हालांकि उनमें रुकती केवल कुछ थीं। मगर रात को दो पैसेंजरों के सिवा कोई गाड़ी नहीं थी।

उसे सवा तीन बजे वाली गाड़ी से जाना था। अभी आठ घण्टे थे। वह अपने परिवार समेत बैलगाड़ी पर लदकर शाम को इधर पहुंचा था। कोई दूसरा तरीका ही नहीं था। रात को चलने से बैल ऊंघते और चौंकते हैं। उनको भी जानवर का डर होता है। इसलिए उसने दिन का सफर तय किया। उसे पहले ही पता था, इन्तज़ार करना पड़ेगा। उसको रात को

जमुहाई लेते रहने और जागने की आदत है, दिक्कत नहीं होगी। औरत-बच्चों की बात और है।

वे सो सकते हैं। वह इतनी देर से चाह भी यही रही थी कि वे सो जाएं—वे कलेवा कर चुके हैं। "मगर हरामज़ादी औरत नहीं मानती। बार-बार कहा, सो जा। मगर जब तक मैं मर नहीं जाऊंगा, इसको नींद नहीं आएगी। पतिव्रता है न।"

इसीलिए उसने स्त्री को, जो लम्बा घूंघट काढ़े हुए थी, सुनाते हुए कहा, "हां, सर्दी है।"

गृहिणी हिली, जिससे उसके गहने बजे। यह इशारा था कि "ताना देने की क्या ज़रूरत है, अच्छा या बुरा, जैसा भी है, मैं समझती हूं।"

आगाह होकर औरत झगड़ालू थी—मर्द ने अपनी पीठ उसकी तरफ कर ली और मुड़कर उस आदमी से चर्चा करने लगा जिसने अभी सर्दी की बात चलाई थी।

उस आदमी ने, जो होल्डाल फैलाकर रज़ाई में लिपटा उसके करीब पड़ा हुआ था, उससे पूछा, "कहां जाओगे ?"

"बीना। और तुम ?" वह चौकन्ना हुआ। सफर में अनजानों को अपना पता-ठिकाना नहीं देना चाहिए।

"ग्वालियर।" दूसरे आदमी ने पड़े-पड़े मज़े में सिगरेट पीते हुए उत्तर दिया।

"ग्वालियर के आसपास डाकू बहुत होते हैं।" उसके मुंह से निकला। वह दरअसल उस वक्त डाकुओं की सोच रहा था। उसके पास इस समय एक हज़ार रुपये थे, नोटों की शक्ल में।

"हां, होते हैं।" दूसरे ने अपने में लीन निरपेक्ष-सा उत्तर दिया।

उसने गौर से उस आदमी को देखा, जो सारी दुनिया से निश्चिन्त धुआं उड़ा रहा था। आदमी तो बुरा नज़र नहीं आता। उसने टटोला। अभी नौजवान ही है। दाढ़ी जरूर बढ़ी हुई है। नहीं बनाई होगी, या फिर हो सकता है लीडर हो। चुनाव के वक्त ऐसे कई नेता आते हैं। हाथ की घड़ी भी इसकी कीमती है।

"कौन-सा धन्धा है आपका ?" उसने अचानक पूछ लिया।

नौजवान ने अबकी बार चश्मे के भीतर से उसे घूरकर देखा, फिर उससे पीछा छुड़ाने के उद्देश्य से तीखा-सा उत्तर दिया, "कोई धन्धा नहीं।" और पढ़ने में लग गया।

वह सहम गया। गलती हो गई। इस तरह नहीं पूछना चाहिए था। यही तो फर्क है पढ़ों और बेपढ़ों का। गणित मैं जानता हूं। मगर गणित से केवल दूकान चलती है, दुनिया नहीं। उसे अफसोस हो रहा था। गाड़ी पर अभी पैर भी नहीं रखे और डांट पड़ गई।

"सब इस औरत के कारण है। लड़के को सुला दे।" उसने क्रुद्ध होकर अपनी गृहिणी से कहा जो रज़ाई के भीतर सो रहे छोटे बच्चे को थपकियां दे रही थी।

छोटी-सी रज़ाई में तीन व्यक्ति एक-दूसरे से चिपके सो रहे थे— उसका सबसे छोटा बच्चा, जो दो साल का था, दूसरा जो दस का था और तीसरा सबसे बड़ा, जो चौदह साल का था।

मैंने ऐसे ही पूछ लिया था। उसने पड़ोसी से कहना चाहा, मगर हिम्मत नहीं हुई।

"लीजिए, सिगरेट पीजिए।" उसने साहस बटोरते हुए सिगरेट उसकी ओर बढ़ाई। दरअसल वह उसे खुश करना चाहता था। बाहर जाओ तो किसी से झगड़ा मत करो और अगर झगड़ा करो तो इस तरह कि दूसरा चित होकर रह जाए। अगर बीवी-बच्चे साथ नहीं होते तो वह इस लौंडे को देखता। "हां, लौंडा ही तो है।"

नौजवान ने अभी-अभी सिगरेट बुझाई थी। इस तरह दूसरों की दी हुई सिगरेट पीने का वह आदी भी नहीं था। उसने दोबारा चश्मे के भीतर से उसे देखा। अपने अचानक-दोस्त का घबराया हुआ चेहरा देख उसे हंसी आ गई। उसकी आंखें पिघलीं और उसने हाथ बढ़ाकर सिगरेट ले ली।

"मेरा नाम विनय है।" पास पड़ी माचिस की डिबिया उठाने के लिए वह तकिए के बल उठा।

"लेटे रहें, लेटे रहें।" उसने जली हुई तीली उसकी ओर बढ़ाई और उसकी सिगरेट सुलगा दी।

"आप भी पीजिए।" नौजवान ने उसके ललाट को देखा जो भीतर धंसा हुआ था। उसकी मूंछें कितनी घनी थीं।

"आप पिएं। मुझको दमा की शिकायत है। कम पीता हूं।" उसने दोनों ही बातें झूठ कही थीं। न वह दमा का मरीज़ था और न वह कम पीता था। वह मनमाना और बेवजह पीता था। दमा तो उसको हो जाना चाहिए था।

नौजवान ने सिगरेट का एक कश लिया, फिर उसे उलट-पलटकर देखा। शायद उसके लिए यह अजनबी सिगरेट थी।

"इधर यही मिलती है। पहले कैंची चलती थी। आजकल लोग 'पीला हाथी' पसन्द करते हैं। मैं भी।" उसने जल्दी-जल्दी कहा और नज़दीक खिसककर नौजवान का स्वेटर देखने लगा जो बड़ी देर से उसे खींच रहा था।

"यह स्वेटर कहां मिलता है ?"

"सब जगह।"

"ऊनी होगा ?"

"हां।"

"कितने का पड़ा ?"

"सत्तर।"

सत्तर सुनते ही स्वेटर में उसकी दिलचस्पी खत्म हो गई, वरना वह सोच रहा था कि अभी जब इस लौंडे को नींद पड़ जाएगी तब वह औरत को दिखाएगा।

दरअसल औरत फूहड़ है। इसे घूंघट काढ़ने और लहंगा उठाने के सिवा कुछ नहीं आता। आजकल की औरतें कनखी से सब देख लेती हैं। क्या बुरा है ?

"बीना में आपकी रिश्तेदारी है ?" नौजवान सिगरेट बुझाकर सोने की तैयारी कर रहा था। यह सवाल भी उसने जमुहाई लेते हुए किया था।

"है नहीं, हो जाएगी।" वह उसके प्रश्न से उत्साहित हुआ था और उसे एक और सिगरेट पिलाने की तैयारी कर रहा था। मगर नौजवान ने इसके आगे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं ली—अपनी आंखें मूंद ली।

नौजवान की उदासीनता से वह बुझ-सा गया। उसके सो जाने से अब प्लेटफार्म उसे अकेला लग रहा था। मगर वह सोया नहीं था। उसकी आंख फिर खुल गई।

"नौ बजे होंगे ?"

"हां।" उसने कहा।

"मेरी गाड़ी बारह बजे जाती है।" नौजवान ने अपने-आप से कहा।

"अभी चार घंटे हैं।" उसने साथ दिया। उसका छोटा बच्चा सो गया था, मगर बड़ा उठ खड़ा हुआ था। लड़का दुबला-पतला था। वह सूती कोट और पैंट पहने हुए था और ठंड में सिहर रहा था।

"यह मेरा बड़ा लड़का है।" वह दोबारा उत्साहित हो रहा था, "इसी की रिश्तेदारी के लिए बीना जा रहा हूं।"

"यह तो अभी बहुत छोटा है।" नौजवान की नींद गायब हो गई थी और वह दिलचस्पी लेने लगा था।

"हम लोग इसी उमर में ब्याह-शादी करते हैं।" उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि नौजवान ने लड़के को 'छोटा' करार देकर, रिश्तेदारी की ताईद की है या विरोध।

"क्या उमर है इसकी ? पढ़ता है ?"

"चौदह का है।" उसने खुश होते हुए कहा। मगर जैसे ही उसने यह कहा वैसे ही उसकी पत्नी के गहने बजे। "पन्द्रहवां चल रहा है।" उसने तुरन्त अपने को सुधारा। उसकी इच्छा हुई, वह इस जड़ चीज़ को, जो बीच-बीच में सजीव हो उठती है, कसकर एक धौल लगाए। औरत जात।

झुंझलाकर उसने लड़के से कहा, "खड़ा क्या है ?"

"पेशाब लगी है।" लड़के ने डरते-डरते कहा।

"तो हो आ, उधर। दूर मत जाना।" लड़का नज़दीक ही खड़ा होकर पेशाब करने लगा।

"क्यों, दूर क्यों नहीं ?" नौजवान को उसकी बातों में रस आने लगा था। वह मज़े में बैठ गया। कम्बल उसने शरीर पर दोहरा कर लिया, फिर सामने की ओर इशारा करता हुआ बोला, "वह, उधर टेकड़ी है न ? है। इस बखत दिखाई नहीं देगी। मुघियारा हो चुका है। इस पर योगमाया

का मंदिर है। वीरान है। सायं उधर से जानवर चला आता है, चारा करने। कभी-कभी इधर भी भटक जाता है। कभी-कभी।" एक सांस में उसने यह सारा इतिहास बता डाला। अपने विवरण पर मुग्ध होकर उसने नौजवान पर दृष्टि डाली जो जानवर और योगमाया का स्वप्न देखता हुआ सो चुका था।

अब उसने अपनी दूसरी जेब से बीड़ियों का बंडल निकाला और अपने-आप को पुकारते हुए, बीड़ी सुलगा ली। "सिगरेट में मज़ा नहीं। चाहे पीला हाथी हो या कैंची। सबमें भूसा है।"

औरत के गहने बजने से वह चौकन्ना हुआ, फिर डपटता हुआ-सा बोला, "क्या है ?" औरत को चुप पा उसने दोहराया, "बोलती क्यों नहीं? वह सो चुका है।" उसका इशारा उस नौजवान की तरफ था, जिसकी उपस्थिति से स्त्री और पुरुष के बीच एक बिना बोली दीवार खड़ी हो गई थी।

स्त्री ने घूंघट ज़रा-सा तिरछा कर देखा—जब उसे यह विश्वास हो गया कि वह सचमुच सो गया है, तब उसने पहले खंखारा, फिर मंद-मंद बोली, "पान नहीं है।"

हरामज़ादी ! इतनी-सी बात के लिए ऐसा बड़ा नखरा ! इस औरत में यही तो कमी है। अरे पान नहीं है, तो पहले बताना था। बोल नहीं सकती थी तो गहने बजा देती। जहां इतनी बार बजाए वहां एक बार और सही।

"ठहर जा। लाता हूं।" वह बुदबुदाता हुआ उठा। लड़का बिस्तरे पर अभी भी खड़ा हुआ था। वह चारों ओर के दृश्य देखता हुआ, कुछ चकित और कुछ प्रसन्न हो रहा था।

"तू क्यों खड़ा है ? सो जा।" उसने लड़के को डांटा। अब तक उससे छोटा लड़का भी जाग गया था पर अपनी जगह पर बैठ गया था।

"नींद नहीं आती।" बड़े लड़के ने कहा।

"तब आओ।" उसने उन दोनों को सम्बोधित करते हुए कहा, "चाय पियो और रात-भर जागो।" दरअसल वह स्वयं उन दोनों के बहाने चाय पीना चाहता था। मगर पत्नी के भय से अपनी इच्छा प्रकट नहीं कर पा रहा था।

"आओ, आओ।" उसने प्यार से उन दोनों को बुलाया और उन्हें साथ ले प्लेटफार्म के दूसरे कोने पर गया जहां ज़ोरदार सुलगती हुई भट्ठी पर रखी हुई बड़ी-बड़ी अलमुनियम की केतलियों से गरमागरम चाय कुल्हड़ों में ढाली जा रही थी।

"हिन्दू चाय है ?" उसने पास जाकर पूछा।

"हां, हिन्दू चाय है।" भट्ठी पर बैठे हुए लम्बी-लम्बी मूंछोंवाले गंदे कपड़ों की गठरी बने उस आदमी ने उत्तर दिया, "हलवाइयों की है।"

"तब, तीन जघा दो।"

"चालू ?"

उसने कुछ सोचा फिर उत्तर दिया, "पेशल। पन्द्रह पैसे न ?"

"हां।" हलवाई ने कहा और पास रखी एक छोटी केतली से 'स्पेशल चाय' ढालने लगा।

भट्ठी की आंच उमदा लग रही थी। आनंदित होकर उसने लड़कों से कहा कि वे पास पड़ी बेंच पर बैठ जाएं। स्वयं भी बैठ वह चाय और आंच का सुख लेने लगा। इस समय अच्छा लग रहा है। कल ग्यारह बजते-बजते बीना पहुंच जाएंगे। लड़कों के लिए बैना ले रखा है कि नहीं ? औरत ने सब इन्तज़ाम कर रखा है। औरत के होने में यही तो सुख है। बड़े-बूढ़े पहले ही कह गए हैं। मज़े में उसने सड़ाक से चाय का एक लम्बा घूंट लिया और नाच उठा। ज़बान जल गई।

"ठंडा करके पियो।" भट्ठी पर बैठे हुए हलवाई ने उसकी मुश्किल भांपते हुए कहा, "मेरे हियां की चाय कभी ठंडी नहीं होती।" उसने प्रशंसा-भरी दृष्टि से हलवाई को देखा, जैसे उसे दाद दे रहा हो। मगर अन्दर से वह झुंझला रहा था। इसीलिए जब आग के आस-पास डोल रहा खजुआ कुत्ता उसके नज़दीक आया तब उसने उसे कसकर लात मारी। कुत्ता 'कैं, कैं' करता हुआ भागा।

"मत मारो।" बेंच के पास ही लम्बे पड़े एक जटाधारी साधु ने चिल्लाकर कहा, "यह हमारा पालतू है।" साधु की डांट से वह डर गया। कहीं वह त्रिशूल लेकर उसकी ओर बढ़ न पड़े।

चाय के पैसे चटपट चुकता कर वह नज़दीक ही पान के ठेले पर खड़ा

हो गया, जहां उसे अपनी बीवी के लिए दो बीड़े पान बनवाने थे। "दो बीड़े क्यों, दस बीड़े। सवेरे तक चबाएगी।"

"देसी या बंगला ?" पानवाला बड़ी देर से खाली बैठा ऊंघ और सो रहा था -अभी कुत्ते के रिरियाने से आंख खुली थी।

"बनारसी।"

"तमाखू या सादा ?"

"जाफरानी।" तम्बाखू न होने से उसकी पत्नी को कब्ज हो जाता था। कई-कई दिन टट्टी नहीं जाती थी।

"ये बाबाजी लोग ऐसे ही होते हैं।" पानवाला पान के साथ उससे बातचीत में भी मशगूल हो गया था। "कहां-कहां से आ जाते हैं। इधर हफ्तों पड़े रहते हैं।"

साधु-मुनि के बारे में अपशब्द वह पसन्द नहीं करता था। (मर्यादा नहीं टूटनी चाहिए) मगर इस समय बाबा की निंदा सुन उसे बुरा नहीं लगा। पानवाला ज़रूर संदिग्ध मालूम पड़ा। क्रिस्तान तो नहीं ?

"तुम कहां के रहनेवाले हो ?" उसने अपने स्वर में आत्मविश्वास पैदा करने की कोशिश की।

"नागपुर।"

तभी है। उधर का आदमी ज़्यादा मान-जान नहीं करता।

"तुम उस छोकरे को कब से जानते हो ?" अपने ठीक पीछे आवाज़ सुन वह चौंका। सवाल उसी से किया गया था।

"किसे ?" पूछता हुआ वह मुड़ा।

"वही शानियल छोकरा।" यह कहता हुआ खलासी उसके और करीब आ गया। नीली कमीज़ और नीली पैंट पर वह एक पुराना लम्बा कोट पहने हुए था, जिसमें उसका शरीर जो वैसे मार खाया हुआ था, रोबदार लग रहा था।

"अभी से।" सकपकाते हुए उसने कहा।

"उससे बचो।" खलासी ने बीड़ी का सिरा दांत से तोड़ सुलगाते हुए कहा, "उसके पीछे पुलिस लगी हुई है।"

"क्यों ?" उसकी इच्छा हुई वह सवाल करे। मगर 'पुलिस' का नाम

सुनते ही वह सतर्क हो गया था।

"वैसे वह मज़े का आदमी है।" उसे सोच में पड़ा हुआ देख नीली वर्दीवाले ने कहा, "मगर क्या करोगे, पुलिस लगी हुई है।"

अपने बिस्तर के करीब जाकर उसने अपनी पत्नी से, जो इस बीच बैठी-बैठी ऊंघने लगी थी, कहा, "ज़रा मुन्ना को उठा ले। बिस्तर का मुंह दूसरी तरफ करना है।" पत्नी ने कोई आपत्ति न कर छोटे बच्चे को गोद में उठा लिया। जब उसने अपना बिस्तरा समेट, पहली जगह से दस हाथ दूर बिछा लिया, तब बच्चे को दोबारा लिटाते हुए उसने कहा, "क्या बात हुई ?"

"कुछ नहीं।" उसने गम्भीर स्वर में कहा, "वह आदमी ठीक नहीं।"

घूंघट उठाकर स्त्री ने उस ओर देखा, फिर कहा, "आदमी तो ठीक लगता है।"

"तू क्या जाने !" उसने घुड़कते हुए कहा, "बड़ों-बड़ों की बात है," फिर वह शांत होकर बैठ गया। स्त्री भी चुप लगा गई थी। दोनों लड़के रज़ाई के भीतर दुबक गए थे, हालांकि बिस्तरा इतना छोटा था कि रज़ाई उनमें से किसी के लिए पूरी नहीं पड़ रही थी।

"दरी ज़रा और फैला दे।" वह खुद भी सांसत का अनुभव कर रहा था। दरी को उसकी ओर फैलाते हुए स्त्री ने कहा, "गाड़ी कै बजे बीना पहुंचेगी ?"

"नौ बजे।" उसने नपा-तुला उत्तर दिया।

"रामचरन जहेज कितना बोले थे ?"

"जहेज नहीं, दहेज। कितनी बार समझाया। औरत की ज़बान पर 'जहेज' बसा है तो बसा ही है। हुआं भी जाकर 'जहेज' ही मांगेगी।" अपने उबाल को ठंडा करते हुए उसने कहा, "अभी बात कहां हुई दहेज की ! लड़की पसन्द आ जाए, फिर होगी।"

"तुम कितना कहोगे ?"

"बारा हज़ार।"

"मान लेंगे ?"

"शादी करनी होगी तो मानेंगे।"

औरत चुप हो गई थी। सोचने लगी थी। यार्ड पर लगी मालगाड़ी आहिस्ता-आहिस्ता पटरी पर चली जा रही थी जिससे प्लेटफार्म भारी लगने लगा था।

"यह कौन-सी गाड़ी है?" स्त्री ने जिज्ञासा की।

"माल है, संटिंग होगी।"

मन-ही-मन 'संटिंग' का अर्थ टटोलते और अपनी सहज-बुद्धि से लगभग सही अर्थ पर पहुंचते हुए स्त्री ऊंघने लगी थी।

"तू सो जा।" उस पर दयार्द्र होते हुए उसने कहा, "अभी गाड़ी में बहुत देर है। बीमार पड़ जाएगी।" वह इस सारी देर में उस नौजवान की बात सोचता रहा था जिसके बारे में उसे बताया गया था कि उसके पीछे पुलिस लगी हुई है। जब स्त्री भी रज़ाई के भीतर दुबक गई, तब वह विश्वास के साथ उठा और उधर चला गया जिधर बैठा हुआ वह खलासी अब भी गप्पें हांक रहा था।

खलासी के पास जाकर उसने जेब से सिगरेट की डिबिया निकाली और रिश्वत देने के अन्दाज़ में एक सिगरेट उसकी ओर बढ़ा दी। उसके व्यवहार से कुछ विस्मित खलासी ने सन्देह की दृष्टि से उसे देखा, मगर सिगरेट कबूल कर ली। जब वह सिगरेट के कश लेने लगा तब उसने उसे विश्वास में लेते हुए, उसके कन्धे पर हाथ रख पूछा, "उस लड़के के पीछे पुलिस क्यों लगी है?" सवाल करते हुए उसकी अंगुलियां कांप रही थीं।

"चार सौ बीस होगा।"

हां, ठीक कहा। चार सौ बीस होगा। तभी सत्तर रुपये का सुईटर पहने हुए है। वाह रे चार सौ बीस! जमाने में आग लगी है। उसने घृणा-भरी दृष्टि से उस बण्डल को देखा जिसमें लिपटा हुआ वह नौजवान सो रहा था।

लो, वह उठ भी गया। 'टिकटघर खुल गया' के अचानक शोर से उसकी नींद खुल गई थी। वह अपने बिस्तर पर बैठ गया था। अपने पड़ोस की जगह खाली पा उसे थोड़ी हैरानी हुई। फिर इधर-उधर नज़र दौड़ा दृष्टि मिलते ही वह मुस्कराया—शायद आश्वस्त हुआ।

जवाब में उसने उसे घूरकर देखा। ऐसे तिड़ीबाज़ों को दूर ही रखना

चाहिए। वह टिकटघर की खिड़की पर जाकर लाइन में लग गया था। उसने महसूस किया उसके ठीक पीछे वही चश्मे वाला नौजवान आकर खड़ा हो गया है। क्या चाहता है ? चार सौ बीस। उसका हाथ अपनी कमर पर था, जहां धोती की गांठ के नज़दीक उसने अपना पैसा (नोट) बांध रखा था। कोट में रखने में हमेशा खतरा होता है—धोती में रखो तो किसी का ध्यान नहीं जाता।

"नहीं।" उसने सख्ती के साथ कहा।

"टाइम क्या हुआ होगा ?"

"मुझे नहीं मालूम।" उसके स्वर में और भी कठोरता आ गई थी।

"आपकी गाड़ी में तो अभी वक्त है ?"

"हां।" उत्तर देते-देते वह कांपने लगा था, भय से। उसे लगा वह पीछे वाला छोकरा उसकी गर्दन पर छुरी रखे हुए है और उससे हर सवाल का जवाब मांग रहा है—ठीक-ठीक बताओ, वरना ··।

वरना क्या ? एक बार हिम्मत कर, पीछे मुड़ उसने देखना चाहा। मगर टिकटघर आ गया था।

"एक ज़नाना, एक मर्दाना, एक ग्यारा साल का बच्चा, एक नौ साल का, एक दो साल का। पांचों बीना।" उसने एक सांस में कहा और दस-दस रुपये के दो नोट आगे बढ़ा दिये थे।

"मगर आपका लड़का तो पन्द्रह साल का है।" पीछे वाला उसकी गरदन पर फुमफुमा रहा था।

"हम ऐसे ही बताते हैं।" उसने कहा और जल्दी-जल्दी टिकट और बाकी पैसे ले बाहर निकल आया। लड़के की उम्र छिपा उसने पैसे बचा लिए थे और अपने किये पर खुश था। अपनी खुशी में उसने उस नौजवान की बदतमीज़ी को माफ कर दिया था। अगर टिकट-मास्टर ने सुन लिया होता तो हम पकड़ ही लिए जाते। कैसे-कैसे बदमाश हैं। जिसका खाते हैं, उसी की गरदन दबाते हैं। अभी हमीं ने सिगरेट पिलाई, दोस्ती दिखाई, अब देखो हमीं को काट रहा है। तभी तो पुलिस पीछे लगी है।

उसने उछलती हुई निगाह उस पर डाली जैसे कोई बडा आदमी किसी टुच्चे को देखता है। उसने पाया कि नौजवान उसे हैरत से देख रहा था।

उसके अचरज से वह शंकित हुआ, फिर साहस बटोरकर उसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ गया।

अपना बिस्तरा पूरी तरह बिछाने की तैयारी करता हुआ वह अपनी स्त्री से बोला, "लल्ला की उमिर कितनी है ?" पत्नी ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा. फिर कहा, "पन्दरा।"

"रास्ते में कोई पूछे तो पन्द्रा मत कहना।" उसने अपने लिए बिस्तरा बिछा लिया था। "नौ कहना।" स्त्री पहले ही लड़के की उमर कम बताने के खिलाफ थी। वह कुछ रुष्ट-सी लगी। उसके रोष को भांपता हुआ वह बोला, "बीना वालों से कोई छिपाव नहीं। रस्तेभर की बात है।" स्त्री समझ न पाकर चुप हो गई थी।

वह जानता था कि वह हुकुमउदूली नहीं करेगी। औरत है न। और अगर कैगी तो देखा जाएगा। वह प्रसन्न और हल्का हो गया था। जैसे इधर सब ठीक हो गया, वैसे ही बीना में भी, परमात्मा ने चाहा तो सब ठीक ही होगा। लड़की अच्छी हुई तो कर लेंगे।

उसने सिर तक कम्बल तान लिया था। एक बार मुंह बाहर कर उधर देखा जिधर पहले उसकी जगह थी। नौजवान बिस्तरा वगैरह बांधकर अपने सामान पर बैठा हुआ था। शायद उसकी गाड़ी आने वाली थी।

बॉस

फोन पर जब दूसरी ओर से आवाज़ सुनाई पड़ी तो उसने कुछ आश्वस्त होकर और कुछ मन-ही-मन पराजित होकर रिसीवर रख दिया। ऐसा तीसरी बार हुआ था।

हफ्ता-भर पहले जब उसके डायल करने पर घंटी देर तक बजती रही थी और प्रतिभा ने नहीं, किसी पुरुष ने, संभवतः उसके किसी सहयोगी ने, रिसीवर उठाया था तब उसे अपनी अचानक-विजय का अनुभव हुआ था, जैसे उसने अपने किसी प्रतिद्वन्द्वी को, जो हमेशा सिर ऊंचा कर चलता हो, रंगे हाथों पकड़ लिया हो।

घर लौटकर उसने प्रतिभा को सिर से पैर तक देखा जैसे मुआइना कर रहा हो। उसे अपनी ओर इस तरह देखते हुए प्रतिभा को विस्मय हुआ। उसने पूछा, "क्या देख रहे हो ?"

एक बार उसकी इच्छा हुई, वह कहे, 'मैं देख रहा हूं, तुम चुस्त-दुरुस्त तो हो ? या कहीं कोई खोट आई है.' मगर उसने अपने को दबाते हुए केवल इतना कहा, "मैंने आज तुम्हें तीन बजे फोन किया।" उसने सोचा, प्रतिभा उसके इतना कहने से सकपका जाएगी और वह पूरी तरह विजेता होकर अपने मन पर पड़ी हुई सारी गर्द एकबारगी झाड़ सकेगा।

मगर प्रतिभा के चेहरे पर कोई उलझन नहीं थी। उसने साड़ी बदलते

हुए पूछा, "क्यों किसलिए फोन किया था ?"

उसने उसके प्रश्न की उपेक्षा करते हुए अपनी चुनौती फिर दोहराई, "तुम उस वक्त अपनी सीट पर नहीं थीं। शायद कहीं और गई हुई थीं।" 'कहीं' पर उसने इस तरह ज़ोर दिया जैसे इस 'कहीं' का अर्थ निश्चित हो।

"किस वक्त ?" प्रतिभा ने अपने में बहकते हुए निर्विकार उत्तर दिया।

"तीन बजे।" उसने दोहराया और उसे सशंक दृष्टि से देखा।

"मैं उस समय लंच पर गई हुई थी।" प्रतिभा ने अपनी उतरी हुई साड़ी तह करते हुए कहा।

तो मेरा सन्देह सही निकला। उसने भीतर-ही-भीतर खुशी का अनुभव किया। उसने अपने मन में तस्वीर बनाई। प्रतिभा को सतीश लंच पर क्वालिटी ले गया है और उससे बिलकुल सटकर बैठा है। या अगर दोनों आमने-सामने बैठे हैं, तो सतीश के घुटने प्रतिभा के घुटनों से सटे हुए हैं और प्रतिभा उसकी हथेलियों से खेल रही है। आखिरकार सतीश उसका बॉस है—अपने बॉस को वह कैसे इन्कार कर सकती है ! नहीं, ऐसे भी ! यह स्त्री के स्वभाव में होता है। वह इसके आगे के दृश्य की कल्पना करना चाहता था, मगर तभी प्रतिभा ने यह कहकर कि "मौसम अच्छा है। बाहर चलना चाहिए," उसकी स्वप्न-कथा को गड़बड़ा दिया।

"हां, चलना चाहिए।" उसने बिना कुछ सोचे-समझे उत्तर दिया, फिर स्वयं पर झुंझलाया। प्रतिभा इस तरह निर्द्वन्द्व नहीं गुज़र सकती। "लंच पर किसके साथ गई थीं ?" उसने बातचीत के टूटे हुए सिलसिले को फिर से जोड़ने का प्रयत्न किया।

"क्या मतलब ?" इस बार भौंहें उठाते हुए प्रतिभा ने ज़रा सख्त स्वर में कहा।

औरत तेवर दिखा रही है। अगर वह चुप रह गया तो बाद में भी चुप ही रहना पड़ेगा।

"मतलब यह कि लंच पर तुम अकेली थोड़े ही गई होगी। आखिरकार दफ्तर का अपना रिवाज होता है।"

"क्या होता है यह रिवाज ?" उसे लगा प्रतिभा जिज्ञासा कर रही है, हालांकि वह उसे डपट रही थी। शायद वह उसका मतलब समझ गई

थी "मुझे लंच पर बाहर नहीं जाना होता। दफ्तर में ही कैंटीन है। सब लोग वहीं जाते हैं।"

उसने चाहा कि पूछे, 'सतीश भी?' मगर इससे बातचीत का स्तर एकदम भौंडे हो जाने के भय से उसने डुबकी मार ली।

दरअसल प्रतिभा की नियुक्ति उसी ने सतीश से कहकर कराई थी। यह खयाल पहले उसके मन में कभी नहीं आया था कि प्रतिभा को कोई काम भी करना चाहिए। उसे पैसे की तंगी कभी नहीं रही। उसे कट-पिट-कर लगभग बारह सौ रुपये मिलते थे, जो उन दोनों के लिए काफी थे, बल्कि बहुत थे। उसे बहुत-से शौक नहीं थे। सारी तनख्वाह वह प्रतिभा को दे देता था—वह उसका जो कुछ करे। विवाह के बाद से इन पांच वर्षों में उसको और अधिक पैसा कमाने की ज़रूरत कभी महसूस नहीं हुई। प्रतिभा ने भी उससे इस सम्बन्ध म कभी कुछ नहीं कहा।

एक दिन उसे अचानक लगा कि प्रतिभा उससे कुछ और चाहती है, मगर कुछ कह नहीं पाती। बिस्तरे पर पड़े-पड़े उसने जैसे अपने-आपसे कहा, "ऐसा लगता है तुम सुखी नहीं हो।"

प्रतिभा ने उसकी ओर करवट ली और हैरानी से देखा। "शायद तुम घर में पड़ी-पड़ी ऊब जाती हो।" उसने अपनी बात जारी रखी, "मैं कल ही सतीश से बात करूंगा। पढ़ी-लिखी स्त्री के लिए कोई-न-कोई एंगेजमेंट होना आवश्यक होता है।" जब उसने प्रतिभा के लिए काम का सुझाव दिया था, तब उसके मन में कोई खोट नहीं थी। शायद वह उसे अपनी समझ से, सचमुच सुखी करना चाहता था या उसके अवसादग्रस्त चेहरे से अपना पीछा छुड़ाना चाहता था। प्रतिभा को हमेशा इस तरह मौन और गुमसुम देखकर उसे डर लगने लगा था। उसे लगता था प्रतिभा का मौन आक्रामक है, उसे दोषी ठहराता है, कटघरे में खड़ा करता है। उसे झुंझलाहट भी होती थी। "आखिर क्या ज़रूरत मैं पूरी नहीं कर रहा हूं?"

दूसरे दिन उसने सचमुच ही उसके बारे में सतीश से बात की। उसने सतीश से कहा, "घर पर प्रतिभा का मन नहीं लगता। क्या वह उसे कहीं, किसी फर्म में, नौकरी दिला सकता है?"

सतीश ने उसे बताया, प्रतिभा जैसी स्त्रियों के लिए, जो कि सुन्दर

और संवरी हुई हैं, सबसे अच्छी जगह एयर इंडिया या आई० ए० सी० हो सकती है, दफ्तरों में शॉर्टहैंड के बिना मुश्किल है। मगर तब भी मैं देखूंगा।"

प्रतिभा को रिसेप्शनिस्ट की नौकरी पर कोई आपत्ति नहीं थी। आखिर रिसेप्शन में करना क्या होता है—ज़रा-सा मुस्कराना, बार-बार साड़ी का पल्लू ठीक करना और बॉस के लिए फोन रिसीव करना। सतीश के विषय में वैसे भी मशहूर था कि वह एक अच्छा अफसर है—अपने मातहतों के साथ बॉस की तरह व्यवहार नहीं करता।

'प्रतिभा को खुश देखकर मुझे खुशी होगी।' उसने सोचा था। मगर पहले ही दिन दफ्तर से लौटने पर प्रतिभा ने जब उससे दफ्तर के वातावरण की प्रशंसा में कहा तो उसे ईर्ष्या हुई। वह विश्वास नहीं कर पा रहा था कि किसी भी दफ्तर का वातावरण घुटन से मुक्त, प्रसन्न और खुला हुआ हो सकता है। आखिर वह भी एक तीन-मंज़िला इमारत में बैठता है, जिसमें सैकड़ों खिड़कियां हैं, हवा भी आती है। मगर तब भी वातावरण में एक दहशत-भरी मुर्दनी है, जैसे तमाम अलमारियों और दराजों में ढेर सारे शव कैद हैं।

वह जानता था कि प्रतिभा जल्द ही किसी से नहीं खुलती। उसे घुलने में थोड़ा वक्त लगता है। वैसे सभी स्त्रियां अपने प्रति सजग रहती हैं, प्रतिभा कुछ ज्यादा ही सजग है। उसने उसे कई बार आज़माया था। अक्सर पार्टियों में या दोस्तों में वह कुछ अलग रहती थी। मगर तब भी उसने विश्वास करना चाहा कि प्रतिभा पहले ही दिन दफ्तर में पूरी तरह घुल गई। उसके मन में उसके लिए वितृष्णा हुई। स्त्री कितनी छोटी होती है। परिवार का, समाज का, दफ्तर का, जहन्नुम का अंग बनते वक्त नहीं लगता।

"दफ्तर तुम्हें पसन्द आ गया लगता है।" उसने उसकी नौकरी के पहले दिन पर टिप्पणी करते हुए कहा। प्रतिभा ने उसकी फबती का कोई उत्तर नहीं दिया—उसे सहज रूप में लिया।

"तुमने कुछ कहा नहीं।" उसे प्रतिभा के चुप रह जाने से चिढ़ हुई। वह जानना चाहता था कि प्रतिभा को अपनी दिनचर्या के परिवर्तन के

विषय में क्या कहना है ? क्या वह सचमुच ही सन्तुष्ट अनुभव करने लगी ? प्रतिभा से कोई उत्तर न पा उसने आंख मूंद ली थी और कुर्सी पर पड़े-पड़े अपने और प्रतिभा के विषय में सोचने लगा था ।

आखिर वह चाहती क्या है ? क्या है जो प्रतिभा को नहीं मिला ? यह, वक्त गुज़ारने का ज़रिया, प्रतिभा की शायद आखिरी ज़रूरत थी, जो पूरी की जा चुकी है। मगर मैं खुद क्या चाहता हूं ? वह अपने सवाल पर चौंक गया। कहीं ऐसा तो नहीं कि मुझे प्रतिभा के सुखी हो जाने के खयाल से अड़चन हो रही है ? वह हड़बड़ाकर कुर्सी पर ठीक से बैठ गया, पाया कि प्रतिभा उसे संशय और चिन्ता की निगाह से देख रही है। उसे लगा वह अचानक ही एक मलबे में परिणत हो गया है। प्रतिभा केवल एक उपस्थिति है। तेज़ी से उठकर वह बाथरूम की ओर चला गया।

प्रतिभा को खुश करने के लिए, उस दिन बाकी समय, वह बिलकुल गैर-स्वाभाविक व्यवहार करता रहा। उसने उसकी साड़ी की, जिस पर उसका ध्यान बहुत कम जाता था, बार-बार तारीफ की, उसे सुन्दर कहा और उसे लेकर सैर पर गया। प्रतिभा को उसके व्यवहार पर हैरानी भी हुई। शायद उसने सोचा, वह किसी कारण—पता नहीं किस कारण—उससे डर गया है और अपनी घबराहट में उसे प्यार कर रहा है।

मगर दूसरे दिन सब-कुछ वैसा-का-वैसा वापस आ गया। उसने फिर प्रतिभा से कहा, "तुम आज बहुत प्रसन्न दिख रही हो।" जैसे प्रसन्न दिखकर प्रतिभा ने कोई गुनाह किया हो। जब पहली बार उसने उससे यह बात कही थी तब प्रतिभा ने बहुत गौर न किया था, मगर अब के, दोबारा उसे यह बात चुभी। क्या उसका प्रसन्न रहना उसे अखरता है ? क्या वह केवल गुमसुम और उदास प्रतिभा को प्यार करता है ?

जब उसने उससे लंच पर बाहर जाने का प्रश्न किया तो प्रतिभा ने उसे डपटा। वह समझ गई थी कि वह दरअसल उसे नहीं स्वयं को कुरेद रहा है। उसके मन में ज़रूर उसके लिए हेय है।

दफ्तर में जाकर वह दफ्तर की नहीं हो गई थी। वह स्वयं अपने को इस वातावरण में कुछ अजनबी अनुभव करती थी। उसे घर और बाहर का फर्क बहुत बड़ा लगता था। इस फर्क को कम करने के लिए बीच-बीच में

वह उसे फोन भी करती थी। हालांकि फोन पर प्रेम की बातें करने या सुनने की उसकी उम्र गुज़र चुकी थी, मगर उससे बातचीत कर ही उसे काफी तसल्ली मिलती थी।

शायद नरेन्द्र भी अपने को तसल्ली देना चाहता है—इसीलिए उसे बार-बार फोन करता है। मगर जब भी वह फोन उठाती है, वह रिसीवर क्यों रख देता है? उसने सोचा। क्या उसे शर्म महसूस होती है? या वह उसकी उपस्थिति को जांचना चाहता है? शायद यही सही है। क्यों? वह अपने दफ्तर का बॉस है या मेरा? मैं सीट पर हूं या नहीं, इससे उसे सरोकार?

प्रतिभा के नौकरी पर जाने के बाद यह पहला दिन था जब उसने सतीश से बात की थी। उसने सतीश से पूछा था कि प्रतिभा कैसा काम करती है? दफ्तर में उसे कम्पनी मिल गई है या नहीं? सतीश ने बताया कि काम कुछ खास होता नहीं, मगर तब भी वह अपने काम में रस लेती है, दफ्तर के वातावरण से वह दुखी नहीं दिखती और यह कि मैं उसका पूरा-पूरा ध्यान रखूंगा।

फोन पर नरेन्द्र से बातचीत के बाद सतीश ने प्रतिभा को बुलाया और कहा कि नरेन्द्र का उसके बारे में फोन था।

"क्या फोन था?" प्रतिभा ने घबराकर कहा। कहीं नरेन्द्र ने उसके बारे में सतीश से कोई ऐसी-वैसी बात तो नहीं कह दी?

सतीश ने बताया कि वह उसकी चिंता कर रहा था। 'चिंता' सुनते ही प्रतिभा को हंसी आ गई।

वह अपनी जगह पर आकर बैठी ही थी कि फोन की घंटी बज उठी। जब उसने रिसीवर उठाकर 'हेलो' कहा तो दूसरी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। "बोलते क्यों नहीं?" उसने झल्लाकर कहा। उसके झुंझलाने पर दूसरी ओर से रिसीवर रख दिया गया था। वह समझ गई थी कि यह नरेन्द्र था। क्या बच्चों का खेल करते हैं? उसे नरेन्द्र पर गुस्सा आ रहा था। आखिर चाहते क्या हैं?

उसने गुस्से में भरकर नरेन्द्र का नम्बर मिलाया और पूछा, "तुमने सतीश को मेरे बारे में फोन किया था?" नरेन्द्र के हां कहने पर उसका

क्रोध भी बढ़ गया।

"तुम सतीश से मेरे बारे में क्या जानना चाहते थे ?" वह लगभग दांत पीस रही थी।

"कुछ नहीं।"

"तुम मुझे ज़्यादा जानते हो या सतीश ? तुम्हें फोन करने की ज़रूरत क्यों पड़ी ? इसके अलावा तुम बार-बार मुझे रिंग करते हो। जब मैं फोन उठाती हूं तो रख देते हो। यह सब क्या है ?" वह चीख रही थी। उसका चीखना जारी था—मगर उसने पाया कि नरेन्द्र ने फोन रख दिया है।

संयत होते हुए उसने सोचा, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था। शुक्र है कि उस वक्त आसपास कोई नहीं था। अगर सतीश को मालूम होता तो वह उसके बारे में क्या नतीजा निकालता।

नरेन्द्र पर इस तरह नाराज़ होने का भी उसे अफसोस हो रहा था। ऐसा पहली बार हुआ था। नरेन्द्र का इसके पहले उसने कभी अनादर नहीं किया था।

उसे घबराहट भी हो रही थी—नरेन्द्र और अपने संबंधों को लेकर। बाथरूम जाकर वह आईने के सामने खड़ी हुई। उसने पाया कि उसकी आंखें डबडबाई हुई हैं। देखे जाने के भय से उसने अपना चेहरा अच्छी तरह धोया और मुस्कराने की कोशिश की—बनावटी मुस्कान जिस पर स्वयं उसका विश्वास नहीं था।

इस तरह नहीं चल सकता। उसने तय किया कि वह दूसरे दिन दफ्तर नहीं आएगी। सतीश को कहलवा देगी कि वह नौकरी नहीं कर सकती। नौकरी, नरेन्द्र और उसके संबंधों पर, ग्रहण की तरह लगी हुई है। वह नरेन्द्र को नहीं खो सकती।

लौटकर उसने पाया कि नरेन्द्र रोज़ से पहले ही घर आ गया था। शायद वह दोपहर को ही आकर सोता रहा था या उसके बारे में सोचता रहा था।

"मैंने तय कर लिया है।" उसने छूटते ही कहा। उसने देखा कि नरेन्द्र की आंखों में शंका थी। कहीं वह बिफरने तो नहीं जा रही।

"मैंने तय कर लिया है।" उसने दोहराया, "मैं कल से दफ्तर नहीं

जाऊंगी।"

"क्यों ?" नरेन्द्र उसे भांपना चाह रहा था।

"दफ्तर में मेरा जी नहीं लगता।" यह कहकर उसने उस पर से अपनी दृष्टि हटा ली।

उसने कोई टिप्पणी नहीं की। वह सोफे पर बैठ गया था। उसने प्रतिभा को समझ लिया था और स्वयं को अपराधी अनुभव कर रहा था।

"तुम सतीश से कह सकते हो।" वह शायद बात आगे बढ़ाना चाहती थी।

नरेन्द्र की चुप्पी पर एक बड़ा-सा पत्थर फेंकते हुए उसने कहा, "तुम अभी कह दो।"

नरेन्द्र ने एक बार उसे घूरकर देखा, फिर कहा, "मेरे पास एक दूसरा रास्ता है।"

क्या वह फिर कोई नाटक करने जा रहा है ? प्रतिभा ने कुछ विस्मय और कुछ शंका में भरकर उससे कहा, "क्या रास्ता है ? मैंने पहले कह दिया न, मैं कल से दफ्तर नहीं जाऊंगी।"

"नहीं। वह बात नहीं। मैंने तुम्हारे लिए दूसरी नौकरी तलाश ली है।"

"मुझे कोई नौकरी नहीं करनी है।" प्रतिभा ने बिफरते हुए कहा, "अब मुझे कहीं नहीं जाना है।"

"यह कैसे हो सकता है ! घर में दिन-भर सड़ना चाहती हो ?"

"अब तक क्या सड़ती नहीं रही थी ?"

"तब की बात और थी।"

"मैंने कह दिया न, मुझे सर्विस नहीं करनी, दफ्तर नहीं जाना है। मुझे कुछ भी नहीं करना है।" वह चीखती हुई किचन की ओर जा रही थी।

"कल सवेरे तुम तैयार रहना। अगर अपनी इच्छा से नहीं तो मेरी इच्छा से।" प्रतिभा ने समझ लिया उसके स्वर में महज औपचारिक अनुरोध है जो आदेश में बदल सकता है।

"क्या तमाशा करना चाहते हो ?" दूसरे दिन उसने नरेन्द्र के साथ दफ्तर में उसके कमरे में घुसते हुए कहा।

"मैंने मैनेजर से बात कर ली है। वह तुम्हें 'लीव वेकैंसी' में नियुक्त कर रहे हैं।"

"दुनिया क्या कहेगी ? मैं तुम्हारी पत्नी हूं या सबार्डिनेट।"

"दुनिया से मुझे कोई मतलब नहीं। इस दफ्तर में पचास लोग मेरे मातहत काम करते हैं। उनमें से कोई मुझ पर अंगुली नहीं उठा सकता।" वह उसे बाहर हॉल में ले आया था, जहां रिसेप्शनिस्ट की कुर्सी खाली थी। प्रतिभा को उस कुर्सी पर बिठाकर वह मुस्कराया।

"काम यहां भी तुम्हें वही करना है जो वहां करना होता था। यानी कि कुछ भी नहीं करना है। यहां तुम्हारा जी लग जाएगा।"

अपने कमरे में वापस आते हुए उसने देखा, दफ्तर में सब लोग रोज़ की तरह काम पर जुटे हुए थे या एक-दूसरे से वार्तालाप कर रहे थे। एक अजीब-सी मुर्दनी थी। प्रतिभा इस समूचे माहौल से अलग नहीं बल्कि उसका एक ज़रूरी हिस्सा लगती थी।

संवाद

स्थिति जिस तरह उलझ गई थी, उसमें वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। उसने कई तरह से सोचा मगर कोई रास्ता नज़र नहीं आया। तब अपने-आप से हारकर उसने निर्णय किया कि साफ-साफ बात करनी होगी और प्रसाद से यह कहना होगा कि मुझसे उलझने से कोई फायदा नहीं, मैं तुम्हारे रास्ते में नहीं आता हूं।

वह प्रसाद की ही प्रतीक्षा कर रहा था। यों प्रसाद ठीक ग्यारह बजे आता है; पर वह दफ्तर कुछ पहले ही आकर बैठ गया था। एक बार निचली मंज़िल पर, जहां प्रसाद बैठता था, वह देख आया था कि प्रसाद आया तो नहीं।

साफ-साफ बात करने में कोई हर्ज नहीं। यह बात वह पिछली रात और अब के अंतराल में कई बार मन-ही-मन दोहरा चुका था। यह ठीक है कि प्रसाद उसका अफसर है, मगर यदि इस तथ्य को भुला भी दिया जाय कि वह उसे अरसे से जानता था—जब वह बेरोज़गार था तब प्रसाद के पास भी कोई काम-धंधा नहीं था—तब भी यह बात कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि उसके और प्रसाद के वेतन में केवल दो सौ रुपयों का फासला है। वह वेतन का फीता लेकर, इस बीच, स्वयं को और प्रसाद को कई बार माप चुका था।

जहां तक जानने की बात है, शायद मेरा एकमात्र अपराध ही यह है कि मैं उसे जानता हूं। मुझे क्या पता था, वह बराबर अपनी तकदीर को कोसता रहता था कि एक दिन अन्न मंत्रालय से तबादला होकर प्रसाद मेरे सिर पर आएगा! सरकार को यह एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय में तबादले का रिवाज खत्म करना चाहिए। वैसे भी एक विभाग के सांचे में ढला हुआ आदमी दूसरे, बिलकुल अलग विभाग की उलझनों को क्या समझ सकता है! इससे निपुणता जैसी कोई चीज़ कायम नहीं हो पाती और सारी व्यवस्था का कसाव टूटता है।

एनासिन की टिकिया उसने मुंह में डाली और बड़ी देर से ठंडी हुई चाय का एक घूंट सड़ाप से मुंह में ले लिया। सुबह से उसके सिर में दर्द था। कई रातों से उसे ठीक से नींद नहीं आई थी। अपनी पत्नी से वह दफ्तर की राजनीति की बात नहीं करता था, इस कारण और भी घुटता था। वह साथ सोए या अलग, साधारणतया उसकी पत्नी कोई सवाल नहीं करती। मगर जब कई दिनों तक वह घर में भी कटा-कटा रहा तब उसकी पत्नी को शंका हुई। उसने कल भी यह कहकर टाल दिया कि कोई खास बात नहीं, और पढ़ने का बहाना कर एक पुरानी भद्दी-सी पत्रिका की आड़ में चेहरा छिपा लिया।

मगर इस तरह कै दिन चल सकता है! तब उसने निश्चय किया कि वह इस मामले को तय करेगा। नरक झेलते जाना अकलमंदी नहीं।

सामने दीवार पर टंगे घड़ियाल में पौने ग्यारह बजे थे। वह ठीक ग्यारह बजे प्रसाद के पास चला जाना चाहता था। देर होने से प्रसाद लोगों से घिरता जाता है और घिरा हुआ प्रसाद हमेशा उसके लिए आततायी साबित हुआ है। हमेशा प्रसाद ने उससे लोगों की मौजूदगी में बात की—अकेले मुठभेड़ से वह कतराता है। प्रसाद अच्छी तरह जानता है कि अकेले मिल जाने पर वह उसका गला नहीं दबोच बैठेगा, तब भी उसने उसे कभी अकेले मिलने का मौका नहीं दिया। शायद इसलिए कि वह जो चुभती हुई बातें उसे औरों के होने पर कह पाता है, अकेले न कह पाए।

एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह किसी को नीचे भेजकर पता कर ले कि प्रसाद आ तो नहीं गया! मगर वह भेद किसी को देना नहीं चाहता

था। चुपचाप बैठा घड़ी की सुइयों का खिसकना देखता रहा।

दफ्तर के इस छोटे-से कमरे में चार मेज़ें थीं, जिसमें से दो खाली थीं। उसके दो सहयोगी छुट्टी पर थे। केवल राम बड़ी देर से सिर झुकाए किसी सवाल में लगा हुआ था। जब भी उसे फुर्सत मिलती वह गणित के सवाल हल किया करता था। उसने गणित में एम० एस-सी० किया था और इतने साल क्लर्की के बाद भी यह भूल नहीं पाया था कि उसने गणित में एम० एस-सी० किया है। राम दक्षिण भारतीय था और बारहों महीने टाई लगाता था। एकदम चुस्त! पी० राम!

एनासिन से थोड़ी-सी राहत ज़रूर मिली, मगर अब भी उसका सिर दुख रहा था. हल्के-हल्के जैसे कोई बीच-बीच में दिमाग की नसों को ऐंठ देता हो। कुछ गर्मी भी थी। उसने उठकर पंखा तेज़ कर दिया। राम ने एक बार सिर उठाकर उसे देखा, फिर गणित में उलझ गया। पंखे की तेज़ हवा से उसकी अपनी मेज़ पर तितर-बितर पड़े कागज़ उड़कर इधर-उधर भागने लगे, जिन्हें बटोरने की कोई इच्छा उसमें नहीं थी।

इनमें वह पूर्ज़ा भी था जो कल शाम प्रसाद ने उसे भेजा था। दरअसल वह पुर्ज़ा न होकर दफ्तरी दस्तावेज़ था। प्रसाद ने उससे स्पष्टीकरण मांगा था कि उसने उत्तरी क्षेत्र के प्लान की कापी, तारीख निकल जाने के बाद भी, अब तक उसे क्यों नहीं भेजी। प्रसाद का चपरासी जब भी कोई कागज़ लेकर उसके पास आता वह समझ जाता कि एक और बुलावा आ गया। अब उसे अपने मातहतों से घिरे प्रसाद को जाकर स्पष्टीकरण देना होगा कि यह काम मेरे ज़िम्मे नहीं था और बदले में प्रसाद से सुनना होगा कि ऑफिस में हर काम हरेक के ज़िम्मे होता है। और इस पर उसके मुंह-लगे सिर हिलाएंगे—यह जानते हुए भी कि यह उसकी गलती नहीं, प्रसाद की बदमाशी है।

प्रसाद और उसके बीच अब यही संवाद रह गया था। हर तीसरे-चौथे किसी कागज़ का आना और उसका अपनी सफाई देना। आखिर कब तक? इस सिलसिले को खत्म करना ही होगा। अब एक दिन भी मुमकिन नहीं।

जैसे ही ग्यारह बजने को हुए, वह उठा और कमरे से बाहर आया।

प्रसाद से उसे क्या कहना है, इसका रिहर्सल वह अपने मन में कर चुका था : 'मिस्टर प्रसाद, मुझे आपसे अकेले में कुछ बातें करनी हैं।' उसने यह वाक्य मन-ही-मन इस तरह दोहराया, जैसे उसे डर हो कि कहीं वह यह कहना भूल न जाए। सीढ़ियों से उतरते हुए उसने अनुभव किया, उसकी हिम्मत टूट रही है। उसके पैर सचमुच कांप रहे थे। वह गलती करने जा रहा है। इससे स्थिति और भी उलझ जाएगी। जो भी हो, यह कहकर उसने अपनी मुट्ठियां कस लीं, जैसे अपने संकल्प को दोहरा रहा हो। अपना गला तर करने के लिए उसने एक लौंग मुंह में डाल ली और चबाते हुए उसका रस निगलने लगा।

प्रसाद के कमरे के बाहर तिपाई पर बैठे हुए चपरासी से उसने पूछा, 'सॉब है' और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना कमरे में घुस गया। उसे भय था कि चपरासी उसे 'पूछकर आता हूं' कहकर बाहर ही रोक देगा।

कमरे में घुसकर दरवाज़े से पास वह, 'मे आई कम इन सर' कहकर ठिठक गया। प्रसाद को 'सर' कहते हुए उसे एक बार जुगुप्सा हुई। मगर अपनी जुगुप्सा को वह लौंग के रस के साथ निगल गया। उसने प्रसाद को पहली बार 'सर' कहा था और उसे लगा यह उसकी पहली पराजय है।

प्रसाद बेतकल्लुफी के साथ अपनी कुरसी पर बैठा हुआ था—टांगें मेज़ पर फैलाए। उसे इस तरह, आक्रामक, कमरे में घुसता देख वह हड़-बड़ाया। मगर जब उसने उसे 'सर' कहकर पुकारा तो वह आश्वस्त हुआ और मेज़ से टांगें हटाता-हटाता हमेशा की तरह सख्त हो गया।

उसने उसे कुरसी पर बैठने का इशारा किया और 'कहिए' की मुद्रा में उसे देखा।

इसके पहले कि वह अपना रटा हुआ पाठ भूल जाए, कुरसी पर अपनी जगह लेते हुए उसने कहा, "मिस्टर प्रसाद, मुझे आपसे अकेले में कुछ बातें करनी हैं।" थोड़ी देर पहले प्रसाद को 'सर' सम्बोधित कर उसने अपने को उसके मातहत के रूप में स्वीकार किया था और अब उसे 'मिस्टर प्रसाद' कहकर अपने को उसकी बराबरी का दर्जा दे रहा था। अपना यह अन्तर्विरोध उसे ज़रा-सा खटका, मगर उसने अपने को संभाल लिया।

प्रसाद उसे गौर से देख रहा था। शायद वह उसे तौल रहा था। उसे भय हुआ कि प्रसाद कहीं टाल न जाए। वह सोच नहीं पा रहा था, वह कैसे प्रसाद को इसके लिए तैयार करे।

इसके पहले कि प्रसाद उसके आग्रह पर कोई कार्रवाई करे, उसने प्रसाद को यह इतमीनान दिलाने के लिए कि उसका कोई बुरा इरादा नहीं, कहा, "मैं पिछले कई दिनों से सोचता रहा। अगर आप मेरे लिए कुछ समय निकाल सकें तो कृपा हो।"

प्रसाद के चेहरे से छायाएं हट रही थीं और वह नरम पड़ रहा था।

बात को आगे बढ़ाते हुए उसने कहा, "यहां शायद बात न हो पाए। दफ्तर में आपको काम भी बहुत होता है। अगर हम लोग आज दोपहर का खाना साथ ही कहीं खाएं तो क्या हर्ज है। वैसे भी जब से आप यहां आए हैं, मैं आपको दावत अब तक नहीं दे सका हूं।" अपने बोलचाल के ढंग पर उसे विस्मय और अभिमान दोनों साथ-साथ हुए। वह साधारणतया इतने सधकर बात नहीं कर पाता था। उसकी बातचीत बिखरी और उलझी हुई होती थी—यह अलग बात है कि वह शुरू से अपने-आपको प्रसाद से अधिक सभ्य मानता था। प्रसाद के पास सलीका है; मगर जो लोग झांककर देख सकते हैं उन्हें यह पहचानने में दिक्कत नहीं होनी चाहिए कि प्रसाद की बातें टुच्ची और आत्मपरक होती हैं।

उसने पाया कि प्रसाद कुछ शंका और कुछ ईर्ष्या की दृष्टि से उसे देख रहा है। उसे इससे दबी हुई प्रसन्नता हुई।

"मैं एक बजे आपको लेने चला आऊंगा।" उससे इस तरह कहा जैसे प्रसाद को अपनी कार में 'लिफ्ट' दे रहा हो—हालांकि गाड़ी न उसके पास थी न अब तक प्रसाद के पास हो पाई थी।

"नहीं, मैं सीधे 'क्वालिटी' पहुंच जाऊंगा।" प्रसाद की आंखों में चमक थी और उसका अन्दाज़ फिर अफसराना हो गया था। चलो, उसने उसका प्रस्ताव मान तो लिया। अपनी जीत का अनुभव करते हुए जब वह कुरसी से उठा तो उसने देखा कि प्रसाद की आंखों में उसके लिए प्रच्छन्न घृणा है। कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने मन से स्वयं को विजेता अनुभव करता हुआ वह अपने कमरे में वापस आकर एक बजने का इन्तज़ार करता

रहा।

एक बजे जब वह 'क्वालिटी' पहुंचा तो उसने पाया कि प्रसाद पहले से ही कोने की एक मेज़ पर बैठा हुआ इस इतमीनान के साथ सिगरेट पी रहा था जैसे खाना खाकर केवल बिल चुकता करने के लिए बैठा हो।

वह प्रसाद के ठीक सामने जाकर बैठ गया। प्रसाद ने उसका कोई स्वागत नहीं किया। पहले की तरह सिगरेट पीता रहा। "आपको आये बहुत देर तो नहीं हुई?"

"नहीं।" प्रसाद ने छोटा-सा उत्तर दिया और अंगुली के इशारे से बैरे को बुलाया।

उसे लगा प्रसाद और उसके बीच का तनाव अभी टूटा नहीं है। प्रसाद इस तरह नहीं खुलेगा, जबकि उसे खोलना ज़रूरी है—वरना वह उसके हाथों उसी तरह अपमानित होता रहेगा। मुझे साफ-साफ बात करनी होगी और बताना होगा कि गलतफहमी को दूर करना ज़रूरी है। "असल में," उसने बात शुरू की, "सारी दुनिया एक बड़ी भारी गलतफहमी है!" उसने सोचा कि इस दार्शनिक अन्दाज़ से बात शुरू करने में यह सुविधा रहेगी कि बातें भी साफ-साफ हो सकेंगी और एक लिहाज़ भी बना रहेगा। वह जब चाहेगा तब आड़ में चला जाएगा—प्रसाद को हकीकत के सामने नंगा छोड़। अपनी रणनीति पर मुग्ध होकर उसने बैरे को देखा जो उन दोनों से आर्डर लेने की प्रतीक्षा में देर से खड़ा था। प्रसाद ने 'मीनू' उसकी ओर बढ़ा दिया था। प्रसाद से अपने 'क्या लेंगे आप?' का उत्तर न पाकर वह स्वयं ही आर्डर करने लगा था। जब बैरा आर्डर लेकर चला गया तो उसने प्रसाद की ओर देखा, उसे टोहने की कोशिश की कि उसकी बात का उस पर क्या असर हुआ।

प्रसाद पहले की तरह अचल बैठा हुआ था। एक क्षण को उसे लगा वह पत्थर के एक ढोंके से जूझ रहा है, जिसका कोई नतीजा नहीं होना है।

उसे अब इस दार्शनिक धरातल से उतरकर नंगे पांव आना होगा, तभी प्रसाद और उसके बीच तादात्म्य कायम हो सकेगा।

"सच बात यह है," उसने अचार का एक टुकड़ा मुंह में रखते हुए कहा, "आपके और मेरे बीच भी गलतफहमी ही है और कोई बात नहीं।"

उसकी बात ठीक जगह बैठी। उसने पाया प्रसाद चौकन्ना हो गया था और उसे कनखी से देख रहा था।

"इस गलतफहमी को कैसे दूर किया जा सकता है?" उसने प्रसाद को इस बातचीत में लपेटना चाहा।

'कैसी गलतफहमी?' प्रसाद उसे शंकित होकर देख रहा था।

"यही जो हमारे-आपके बीच है।" प्रसाद चुपचाप 'सूप' पीने का उपक्रम कर रहा था।

"दरअसल मुझे लेकर आपको कई तरह की शंकाएं हैं। शायद आपको मेरे बारे में समय-समय पर गलत जानकारियां दी जाती रही हैं।" वह एक सधे हुए वक्ता की तरह बोल रहा था। भीतर-ही-भीतर उसे घबराहट तो हो रही थी कि कहीं प्रसाद अचानक बिफर न पड़े, मगर वह अपने-आपको बांधे हुए था। "शायद आपको यह खबर दी गई है कि मैं आपके दुश्मनों के साथ हूं। मुझे पता नहीं कि इस जगह आपके विरोधी कौन हैं— मैं हमेशा अलग-थलग रहता आया हूं पर अगर पता भी होता तो कोई फर्क नहीं पड़ता। आपका विरोधी होने का मेरे लिए प्रश्न ही नहीं उठता।"

प्रसाद उसकी बातों से कुछ अचंभित हुआ था। उसने सोचा प्रसाद शायद यह सोच रहा है कि उसने अचानक हथियार कैसे डाल दिए। यह नहीं मालूम हरामज़ादे को कि मैंने हथियार डाले नहीं हैं, बदल दिए हैं। गधा है न! उसे प्रसाद की मूर्खता पर हिकारत हुई। एक बार इच्छा हुई कि सारा-का-सारा सूप उसके मुंह पर उलट दे। जो भी हो, मैं उससे लड़ना नहीं चाहता। मुझे उससे कोई सरोकार नहीं। अगर वह मुझे बख्श दे तो मैं उससे घृणा करता हुआ अपने में बना रह सकता हूं।

प्रसाद ने जब उस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की तब उसने कहा, "आप स्वयं सोचें, मैं आपके रास्ते में कहां आता हूं।"

इस बार प्रसाद ने उसका सामना करते हुए कहा, "मैं आपसे नाराज़ नहीं हूं।"

आखिर वह खुला। सिलसिला यहीं नहीं टूट जाना चाहिए। प्रसाद से उसका सारा तनाव आज की दोपहर ढीला पड़ जाना चाहिए। दोबारा यह मौका नहीं आएगा।

"नहीं, नाराज़ी की बात तो मैंने कभी नहीं सोची। मुझे पुराने दिन याद हैं। मुझे वह भी दिन याद हैं जब मेरे पास कुछ भी यहीं था, तब आपने खुद उधार देकर मेरी मदद की थी। मेरे दिल में हमेशा आपके लिए इज़्ज़त रही है और रहेगी।" वह सिनेमा में अपने पार्ट की तरह अपनी बातें संभाल-संभालकर और थोड़ी नाटकीयता के साथ कहे जा रहा था। "मैं जानता हूं आपमें द्वेष नहीं—जो कुछ है, साफ है। वैसे दफ्तरों में यह सब होता ही है।"

दफ्तर का नाम सुनकर प्रसाद की दिलचस्पी प्रकट रूप से कुछ बढ़ती हुई लगी।

"क्या सब ?" प्रसाद ने सूप का प्याला अपने सामने से हटाते हुए कहा।

"यही, जो इन दिनों होता रहा है। कुछ लोग हैं जिनका काम ही इधर-से-उधर लगाना है।"

"कौन लोग हैं ?" प्रसाद अब इस बातचीत में साफ-साफ दिलचस्पी लेने लगा था।

"दीक्षित वगैरा।" वह भी एक कदम चलकर बहुत आगे बढ़ आया था।

"दीक्षित और ?" प्रसाद बिलकुल ढीला पड़ चुका था। उसने सोचा अब प्रसाद का मुखौटा उतर चुका है और उसका असली चेहरा सामने है। हम दोनों अचानक नंगे हो गए—यह अच्छा ही हुआ।

"दीक्षित, आप जानते ही हैं, अकेला तो है नहीं। उसके साथ उसकी सारी मंडली है। कृपाल, नरोन्हा, सादिक, बिरमानी। ये सब लोग इस दफ्तर में एक गुट बनाए हुए हैं। इनका काम ही है, जो इनके साथ नहीं है, उसका जीना हराम कर देना। आप इस दफ्तर में बाद में आए हैं—इसलिए आप इन्हें नहीं जानते।" वह जानता था कि उसने यह बात प्रसाद को खुश करने के लिए कही है वरना प्रसाद इन्हें अच्छी तरह जानता था। दर-असल प्रसाद इनका 'दादा' है। मगर वह प्रसाद को खुश करने के अलावा स्वयं को भी यह विश्वास दिलाना चाहता था कि प्रसाद बुनियादी तौर पर इनसे भिन्न है, इनसे ऊपर उठा हुआ है, केवल परिस्थितियों के कारण उनके जाल में फंस गया है। अपने को यह विश्वास दिलाए बिना प्रसाद से

बातचीत की कोई बुनियाद नहीं हो सकती थी।

"मैं इस दफ्तर में जब आया तब मुझे इन लोगों ने घेरा और चाहा कि मैं उनके गिरोह में शामिल हो जाऊं और लूटपाट में उनका साथ दूं। मैं किसी की लूटपाट का विरोध नहीं करता।" यह कहते हुए उसने प्रसाद की आंखों में अपनी आंखें डालीं। प्रसाद ने अपनी दृष्टि उस पर से हटा ली थी। "मगर" उसने पहले की तरह मासूम बनते हुए कहा, "मैं किसी भी गिरोह में शामिल नहीं होता। तुमको जो कुछ करना हो करो। मेरे को मत छेड़ो। मैं अलग-थलग रहने वाला आदमी हूं। जैसे अर्जुन ने वृहन्नला बनकर चौदह साल गुजार दिए वैसे ही मैं भी गुमनाम होकर अपनी ज़िदगी गुज़ार रहा हूं।"

उसने देखा प्रसाद ने अपनी दृष्टि नीची कर ली थी और सचमुच कुछ सोच रहा था। वार खाली नहीं गया। मैंने उसे केवल मेरे बारे में नहीं बल्कि स्वयं के विषय में सोचने के लिए विवश कर दिया। मगर उसे इस वक्त अपनी जीत की नहीं बल्कि इस बात की खुशी थी कि अब उसे प्रसाद के रोज़मर्रा के कागज़ों से छुटकारा मिल जायेगा।

"असल में यह परिस्थिति का दोष है, वरना...।" वह इस बातचीत को फिर छद्म दार्शनिक धरातल पर रखने लगा था।

"वरना क्या ?" प्रसाद फिर उसकी ओर मुखातिब हो चला था।

"वरना कोई किसी का विरोधी नहीं होता। हम सब साथ रहने के लिए अभिशप्त हैं।" उसने कोशिश के साथ कहीं पढ़ा हुआ मुहावरा दोहराया।

"दीक्षित को तुम कब से जानते हो ?" प्रसाद 'आप' से 'तुम' पर उतर आया था। उसे यह अच्छा भी लगा। मगर वह क्या करे ? क्या वह प्रसाद को बदले में 'आप' कहकर अफसर और मातहत की दूरी बनाये रखे या कि तोड़ दे ? उसने निश्चय किया कि एक बार तो वह प्रसाद को 'तुम' कहकर सम्बोधित अवश्य करेगा। फिर बाद में जो होगा, देखा जाएगा। वैसे भी प्रसाद उसका समवयस्क है। जहां तक प्रतिभा का ताल्लुक है, प्रसाद नक्काल है। उसे छू भी नहीं सकता।

"तुम उन दिनों तबादला होकर यहां नहीं आये थे। तुम्हें उसने जिन-

जिन के बारे में जो-जो बातें बताई होंगी, सब झूठी हैं। असल में वह सबसे लड़ाकर तुम्हें नष्ट कर देना चाहता है।" वह एक सांस में यह सब कह गया। उसे डर था कि अगर वह ज़रा भी रुका तो उसके मुंह से प्रसाद के लिए 'तुम' नहीं निकल पाएगा। अपनी बात खतम कर, घबराकर उसने प्रसाद को देखा।

प्रसाद में कोई अन्तर नहीं आया था, जैसे उसने संबोधन पर ध्यान न दिया हो।

"मेरा भी दीक्षित के बारे में यही खयाल है।" प्रसाद खाना समाप्त कर चुका था। दरअसल, उसने गौर किया, प्रसाद ने खाने के नाम पर एक नान और गोश्त के थोड़े-से शोरबे को छोड़ कुछ भी नहीं खाया था। यह इसमें अच्छी बात है। "मैं उससे वाकिफ हूं।" प्रसाद सींक से अपने दांत कुरेदता हुआ बातें कर रहा था। "मैं उससे होशियार भी हूं। जहां तक तुम्हारा सवाल है, तुम्हारी सी० आर० शुरू से ठीक रही है—मेरे आने से पहले से भी। मैं दूसरों की बात पर नहीं जाता। लोगों के बारे में अपनी राय खुद बनाता हूं।"

उसे लगा प्रसाद अपने-आपको फिर बड़ा करने लगा है। इसे यहीं रोक देना ज़रूरी है।

"तुम्हारे बारे में खैर तुम्हारे दुश्मन भी नहीं कह सकते कि तुम कान के कच्चे हो!" उसकी बात में प्रसाद के लिए व्यंग्य था जिसे उसने समझ लिया था, मगर बुरा नहीं माना।

"कृपाल किसका आदमी है?" प्रसाद उसे खोद रहा था।

"सेक्रेटरी का।" उसने और भी उत्साहित होते हुए कहा। "सुनते हैं सेक्रेटरी की औरत उस पर मरती है। उसी ने उसे यहां रखवाया है।"

"सेक्रेटरी तो बूढ़ा है।" प्रसाद उसी तरह दांतों से मांस के रेशे निकाल रहा था।

"उसकी बीवी तो जवान है।" वह आगे कुछ कहने जा रहा था कि रुक गया। उसे लगा वह अपने संभ्रांत स्तर से काफी नीचे उतर आया है। एक तो इस प्रसाद से बात करने का फैसला कर उसने अपने-आपको गिरा लिया था। अब वह लगभग उसी की भाषा मे बात कर और भी गिरता

जा रहा है। मगर यह ज़रूरी है, उसने मन-ही-मन अपना प्रतिरोध किया। फिर सहमता हुआ बोला, "है भी तो कृपाल देखने में अच्छा।"

"हां, यह तो है।" प्रसाद ने उससे सहमति की। उसे लगा कि उन दोनों के बीच जो दीवार थी वह पूरी तरह टूट चुकी है और रिश्ता कायम हो चुका है। उसका खयाल ठीक था, प्रयत्न करने से गलतफहमियां दूर हो सकती हैं और बातचीत हो सकती है।

"मैं इस दीक्षित की फाइल बुला रहा हूं।" प्रसाद उसे आश्वस्त कर रहा था।

"आप कुछ और लेंगे?" उसने प्रसाद से पूछा, "चाय, कॉफी?"

"नहीं, कुछ नहीं। वैसे भी हम लोगों को चलना चाहिये। देर हो चुकी है।" प्रसाद अपनी घड़ी देख रहा था। उसका 'हम दोनों' कहना उसे आत्मीय लगा। उसने अनुभव किया कि वे सचमुच ही 'हम दोनों' हैं।

बिल चुकाकर खड़े होते हुए उसने प्रसाद का शुक्रिया अदा किया, जिसका प्रसाद ने शुक्रिया में ही जवाब दिया।

उसने बाहर निकलते हुए कहा, "किसी दिन घर पर आओ। मेरी पत्नी का भी आग्रह है।" पत्नी का नाम घसीटते हुए उसे थोड़ी-सी हिचक तो ज़रूर हुई थी, पर प्रेम और युद्ध में सब क्षम्य है।

"हां-हां, ज़रूर आऊंगा।" यह कहता हुआ प्रसाद आगे बढ़ गया था। उसने सोचा प्रसाद उससे अलग दफ्तर जाना चाहता है। ठीक भी है। दफ्तर में वे साहब और मुलाज़िम हैं। मगर जब प्रसाद टैक्सी रोककर उससे उसमें बैठने का आग्रह करने लगा तो उसे आश्चर्य हुआ। इसका मतलब है प्रसाद अन्दर-बाहर एक जैसा है।

अपने विस्मय और आह्लाद में डूबे हुए उसने रास्ते में प्रसाद से कोई बात नहीं की। दफ्तर के करीब वह टैक्सी से उतर पड़ा और पान लेने का बहाना कर रुक गया। उसे प्रसाद के साथ दफ्तर में प्रवेश करते हुए संकोच का अनुभव हो रहा था। मगर जितनी देर वह पान बनवाता रहा, प्रसाद उसका इन्तजार करता रहा। प्रसाद के साथ दफ्तर में घुसते हुए उसे लगा यह दफ्तर उसके लिए अब अजनबी नहीं रहा।

अपने कमरे में पहुंचने पर उसने पाया राम गणित के सवाल हल

करता हुआ अपनी सीट पर बैठा-ही-बैठा सो गया था। राम की ओर देखकर वह मुस्कराया और अपनी कुरसी पर पसर गया। कोई काम करने की इच्छा नहीं थी। सारा समय वह प्रसाद के विषय में सोचता रहा।

घर लौटकर उसने अपनी पत्नी से तैयार होने के लिए कहा। उसका प्रस्ताव सिनेमा के लिए था। वह अपने को मुक्त और स्वाधीन अनुभव कर रहा था। उसकी पत्नी भी उसके व्यवहार पर चकित थी। पर न वह संकोचवश कुछ पूछ सकी और न ही उसने इस सम्बन्ध में कुछ कहा।

दूसरे दिन सवेरे दफ्तर में वह अपने सहयोगियों पर नज़र फेंकता हुआ अपने कमरे में घुसा। उसे लगा या तो लोग बदले हुए हैं या वह स्वयं बदला हुआ है। किसी काम में उसका मन नहीं लग रहा था। वह एक बार जाकर प्रसाद से मिल आना चाहता था।

किसी तरह औरों की नज़र बचा प्रसाद के कमरे तक पहुंचा। चपरासी ने बताया कि साहब कमरे में हैं और इस वक्त कोई नहीं है।

दरवाज़ा खोल वह बेतकल्लुफी के साथ जाकर एक कुरसी पर बैठ गया। प्रसाद किसी कागज़ पर नज़र गड़ाए हुए था। क्षण-भर के लिए दोनों की आंखें मिलीं। फिर प्रसाद ने अपनी निगाह नीची कर ली।

कागज़ पर दस्तखत कर चुकने के बाद प्रसाद उसकी ओर मुड़ा। उसने पाया कि वह प्रसाद से आंखें नहीं मिला पा रहा है और उन दोनों के बीच एक अजीब-सी चुप्पी है। कमरे में उसे दम घुटता-सा लगा।

प्रसाद ने उसे देखकर मुस्कराने का प्रयत्न किया। उसे लगा प्रसाद अपनी कामयाबी पर मुस्करा रहा है।

"और ?" प्रसाद ने उससे सवाल किया। "और ठीक है।" उसने पाया उसके पास सचमुच ही कहने के लिए कुछ नहीं और शायद प्रसाद के पास भी। क्षण-भर पहले का उसका उत्साह प्रसाद से मिलते ही ठंडा हो चुका था। वह अपनी कुरसी से उठा।

"चाय पीते जाओ।" प्रसाद ने उसे हांक दी।

"फिर आऊंगा।" प्रसाद की आत्मीयता से घबराते हुए उसने कहा।

उसने निश्चय किया अब से वह प्रसाद के कमरे में अकेला नहीं जाएगा।

रिपोर्ट

उसने तीसरी बार रिपोर्ट लिखकर फाड़ दी थी और बुलाये जाने पर सम्पादक के कमरे में, मुजरिम की तरह जा खड़ा हुआ था। सम्पादक ने उसे बिठाया और उसके लिए चाय मंगाई।

"आखिर तुम्हें दिक्कत क्या है ?" सम्पादक ने उससे पूछा। सम्पादक अपने स्टॉफ के हर सदस्य को 'आप' कहकर सबसे दूरी बनाये रखता था—उसे परेशान देख उसे सांत्वना और साहस प्रदान करने के इरादे से ही उसने इस वक्त उसे 'तुम' कहकर सम्बोधित किया था। वैसे भी सम्पादक उम्र में उससे काफी बड़ा था। उसका 'तुम' कहना उसे बुरा नहीं लगा।

"डाक-संस्करण में स्टोरी नहीं गई। इसका मतलब है हमारा अखबार एक दिन पिछड़ गया। मुझसे ज़्यादा यह तुम पर 'रिफ्लेक्शन' है।"

वह समझ गया समाचार सम्पादक ने उसकी शिकायत की है। मगर वह इससे कटु नहीं हुआ। कायदे से उसे अपनी स्टोरी डाक-संस्करण के लिए फाइल कर देनी चाहिए। आखिर और सभी पत्रों में यह समाचार जाएगा, केवल उसके पत्र में यह नहीं होने से, ज़ाहिर है, सम्पादक की बदनामी होगी।

"अगर तुमने इतना भी बता दिया होता कि तुम वक्त पर स्टोरी नहीं दे सकोगे तो एजेंसी रिपोर्ट को ले लिया गया होता। मगर उन्होंने तुम पर

भरोसा किया, जिसका यह नतीजा है।"

वह कहना चाहता था कि उन्होंने उस पर गलत विश्वास नहीं किया था। वह सचमुच ही अपनी रिपोर्ट समय पर देना चाहता था। उसने तीन बार कोशिश की, मगर सम्भव नहीं हुआ।

"आखिर इसमें दिक्कत क्या है?" सम्पादक ने अपना प्रश्न दोहराया, "तबीयत तो ठीक है?"

"हां, ठीक है।" उसने सिर हिलाया।

"तुम इस प्रोफेशन में नये नहीं आए हो। यह भी नहीं कि पहली बार तुम्हें ज़िम्मेदारी का काम सौंपा गया हो।" सम्पादक जैसे उसकी ओर से बयान देता हुआ उसकी स्थिति स्पष्ट करना चाह रहा था, "कोई-न-कोई बात ज़रूर होनी चाहिए। ऑफिस में तो ठीक चल रहा है।" सम्पादक को शुबहा हुआ कि यह सब दफ्तर की राजनीति के कारण हुआ है।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।" उसने तुरन्त प्रतिवाद किया।

"तो फिर क्या बात है?" सम्पादक के स्वर में झुंझलाहट थी।

उसने सिर झुका लिया और जैसे बाहर जाने की इजाज़त मांगते हुए कहा, "आइन्दा ऐसा नहीं होगा।"

बाहर आकर वह अपनी जगह पर बैठ गया था। रिपोर्टर्स डेस्क लगभग खाली थीं—उसके सभी सहयोगी काम पर बाहर थे। केवल एक लड़की, सुधा, जो एप्रेंटिस के बतौर काम कर रही थी, मेज़ पर झुकी हुई कुछ टाइप कर रही थी। उसने उसे एक बार देखा, फिर काम पर लग गई। पास की लम्बी मेज़ पर उपसम्पादकों की एक टोली, समाचारों को काट-छांट रही थी और छपी हुई लम्बी-लम्बी कतरनों पर तेज़ी से निगाह दौड़ा रही थी। टेलीप्रिंटर से निकलता हुआ कागज़ का रोल बढ़ता-बढ़ता ज़मीन पर लोटने लगा था। अनायास ही उठकर वह टेलीप्रिंटर द्वारा उगले हुए समाचार—रोल विधिवत् फाड़ने लगा—हालांकि यह उसका नहीं स्टूल पर उपसम्पादकों के करीब बैठे हुए चपरासी का काम था। दो-एक ने उसे कुछ हैरानी के साथ देखा, फिर अपने काम में मशगूल हो गए।

लम्बा हॉल पार कर वह बाथरूम तक आया, सिगरेट सुलगाई और दीवार पर लगे हुए आईने के सामने खड़ा हो गया। चीफ रिपोर्टर भंडारी

को, जब उससे मज़ाक करना होता तब वह उसके बालों की ओर, जो एक-तिहाई काले और दो-तिहाई सफेद हो गए थे, इशारा करते हुए कहता, "प्रकाश की रिपोर्ट में एक-तिहाई सच, दो-तिहाई झूठ होता है।" ऐसे समय में वह अपने बालों पर हाथ फेरने लगता।

चीफ की बात गलत नहीं थी। रिपोर्ट को अधिक-से-अधिक चटपटा बनाने के खयाल से, वह तथ्यों से अधिक कल्पना और अनुमान से काम लेता था। उसकी रिपोर्ट प्रामाणिक उतनी नहीं होती थी जितना कि उसमें ड्रामा होता था।

मज़ाक का जवाब मज़ाक में देते हुए वह कहता, "जासूसी उपन्यास और अमेरिकी पत्रिकाएं पढ़ते-पढ़ते मेरा दिमाग खराब हो चुका है।"

आईने के सामने खड़े होकर जवानी में ही पके अपने बालों पर हाथ फेरते हुए उसने सोचा, चीफ ने उसकी रिपोर्ट आज देखी होती तो ज़रूर खुश होता। उसमें एक-तिहाई भी सच नहीं था। सारा-का-सारा झूठ था।

अपनी सीट पर बैठा हुआ वह अपनी फाड़ी हुई रिपोर्ट के पुर्ज़ों को जोड़ने का प्रयत्न कर रहा था। खिड़की के बाहर शाम हो रही थी। सम्पादक और सहायक सम्पादक जा चुके थे। उससे कुछ दूर बैठी हुई एप्रेंटिस लड़की अभी कुछ टाइप करने में व्यस्त थी––वह रिपोर्टर से अधिक स्टेनो लग रही थी, अपनी अस्तव्यस्त रिपोर्टरनुमा मुद्रा के बावजूद।

पुर्ज़ों को जोड़कर वह रद्द की हुई रिपोर्ट पढ़ रहा था : "नई दिल्ली, 11 दिसम्बर। चांदनी चौक में उपद्रवकारियों पर पुलिस की गोलियों से नौ व्यक्ति मरे और तैंतीस घायल हुए। आरम्भ में पुलिस ने उपद्रवकारियों को तितर-बितर करने के लिए आसू गैस छोड़ी। इस पर उन्मत्त भीड़ ने पुलिस पर पत्थरों की वर्षा की और आसपास की दूकानों और इमारतों में आग लगा दी। मजबूर होकर तथा स्थिति पर काबू पाने के लिए पुलिस को छह बार गोली चलानी पड़ी। गृहमंत्रालय के एक प्रवक्ता ने बताया कि उपद्रवकारियों के हाथों लगभग तीन लाख रुपयों की सम्पत्ति को नुकसान पहुंचा है। चांदनी चौक, दरियागंज तथा आसपास के इलाकों में तनाव की स्थिति को देखते हुए आज शाम 6 बजे से कल सवेरे 7 बजे तक के लिए कर्फ्यू लगा दिया गया है।"

उसने ट्रे में पड़ी हुई समाचार एजेंसी की रिपोर्ट उठा ली और मिलान करने लगा। उसने पाया कि एजेंसी ने अपनी रिपोर्ट में लगभग वही बातें कही थीं जो कि उसने अपनी रिपोर्ट में कही हैं—यहां तक कि दोनों की भाषा भी एक जैसी है। रिपोर्ट में कुछ भी गलत नहीं था, सारा विवरण तथ्यों पर आधारित था। वह स्वयं घटनास्थल पर मौजूद था और उसने यह बिलकुल सही लिखा था कि पुलिस को मजबूर होकर गोली चलानी पड़ी। यह भी उसने सच लिखा था कि भीड़ ने दूकानों और इमारतों के साथ मनमाना सलूक किया। मगर तब भी, उसने महसूस किया, उसकी सारी-की-सारी रिपोर्ट झूठ है। कोई-न-कोई ऐसी चीज़ है जो इस सारे विवरण को झूठा और गलत साबित करती है।

उसके सहयोगी फोटोग्राफर कालिया ने जो तस्वीरें ली थीं, उनमें से कुछ, जिन्हें समाचार-सम्पादक ने रद्द कर दिया था, दूसरी ट्रे में पड़ी हुई थीं। उसने उन्हें उठा लिया और उन पर गौर करने लगा। उसे लगा ये तस्वीरें उतनी ही बेजान और झूठी हैं जितनी उसकी रिपोर्ट। इनमे वह चीज़ नहीं।

कौन-सी चीज़ ? वह समझ नहीं पा रहा था कि वह कौन-सी चीज़ है जिसके न होने से उसका विवरण, समाचार एजेंसी की स्टोरी और कालिया की तस्वीरें, सारी चीज़ें अवास्तविक लगती हैं।

पियन उसके सामने समाचार-सम्पादक का एक पुर्ज़ा रख गया था जिस पर लिखा था—गोली-कांड को लीड-स्टोरी के बतौर जाना है। क्या वह अपनी रिपोर्ट देगा ? या कि समाचार एजेन्सी के विवरण से ही काम चला लिया जाए ?

उसने गुस्से में भरकर समाचार-सम्पादक को देखा, जो दूर एक अलग मेज़ पर बैठा हुआ, कागजों के ढेर में खोया हुआ था। उसने पुर्ज़े पर लिखा, कोतवाली और अस्पताल से हताहतों की ताज़ी सख्या इकट्ठा कर अपनी रिपोर्ट लौटकर दे दूंगा और पियन से कहा कि वह यह स्लिप समाचार-सम्पादक को दे दे।

वह तेज़ी से बाहर आया और स्कूटर भी आवेश में स्टार्ट किया। दरअसल वह कोतवाली जाना चाहता था, मगर उसने स्कूटर चांदनी चौक

की ओर मोड़ दिया।

उसने गलत नहीं लिखा था। दरियागंज, जामा मस्जिद और आसपास के इलाकों में तनाव था। अभी छह नहीं बजे थे और कर्फ्यू लागू नहीं हुआ था, मगर दूकानें बंद हो चुकी थीं, जैसे हड़ताल हो। दरियागंज के रास्ते पर और दिन फोरसीटर, टूसीटर और तरह-तरह की गाड़ियों की भरमार होती थी, मगर आज सड़कें लगभग खाली थीं या खाली हो रही थीं। लोग दफ्तरों से पांच के पहले ही घर लौट चुके थे। सिनेमाघर बुझा हुआ लग रहा था।

चांदनी चौक में घुमते हुए उसने दोनों ओर की दूकानों पर दृष्टि डाली जो दोपहर को ही बन्द हो चुकी थीं। पूरी तरह सन्नाटा था। केवल सड़क पर घुड़सवार पुलिस गश्त लगा रही थी। घरों के दरवाज़े वन्द थे। केवल किसी-किसी छत या दूसरी मंजिल पर बच्चों का शोर सुनाई पड़ जाता या कोई आकृति दिख जाता। फव्वारे के करीब, जहां दोपहर को गोली चली थी, एक चाय की दूकान खुली हुई थी। उसने अपना स्कूटर वहां खड़ा कर दिया और चाय पीने की इच्छा से दूकान के अन्दर बैठ गया। दूकानदार ने बिक्री लगभग बन्द कर रखी थी अगर पुलिसवालों को चाय की तलब महसूस नहीं होती तो यह दूकान भी अब तक बन्द हो चुकी होती। मुश्किल से आठ-दस आदमियों के बैठने की जगह थी। एक किनारे सिगड़ी पर चाय तैयार हो रही थी और पास ही एक बड़े थाल पर सुबह के बने पकौड़े रखे हुए थे।

अन्दर घुसते हुए उसने दूकान का दरवाज़ा कुछ और खोल दिया था। इस पर दूकानदार उस पर झल्ला रहा था। उसने कहा, मैंने केवल हवा के इरादे से ऐसा किया है। दूकानदार ने कहा, दिसम्बर की सर्दी है। अगर आपको सचमुच गर्मी लग रही है तो किसी और जगह जाना था। उसे अपमानित होता देख, सब-इंस्पेक्टर ने, जो उसे पहचानता था, अपनी चाय की प्याली मेज़ पर रखते हुए, दूकानदार को डांटा, "ठीक है, ठीक है। ज़्यादा बक-बक मत कर।"

सब-इंस्पेक्टर के चले जाने के बाद दूकानदार प्रकाश को सुनाता हुआ इंस्पेक्टर को देर तक गालियां देता रहा, फिर अपने-आप चुप हो गया।

होटल में अब भी चार-पांच लोग बैठे हुए थे—शायद उन्हें कहीं जाना नहीं था। वे दोपहर के उपद्रवों को लेकर बात कर रहे थे। प्रकाश उन्हें चुपचाप सुन रहा था, वे केवल कल्पनाएं कर रहे थे। दरअसल वे अपने को सारी घटना के साक्षी बताते हुए एक-दूसरे पर रोब डाल रहे थे।

जब प्रकाश से नहीं रहा गया तब उसने कहा, 'गोली उधर से नहीं उधर से चली थी।' वह बाहर की ओर अंगुली से इशारा कर रहा था।

उन लोगों ने या तो उसकी बात सुनी नहीं थी या फिर सुनी थी तो उसकी उपेक्षा कर दी। वे अपने में मशगूल थे।

सब-इंस्पेक्टर बाहर, चौराहे से ज़रा हटकर जहां खड़ा हुआ था, आर्म्ड कांस्टेबुलरी ने पहली बार ठीक वहीं पर खड़े होकर गोली चलाई थी।

गोली चलने के पहले काफी उत्तेजना थी। कोई दस हज़ार लोगों की भीड़ होगी। जब आंसू गैस छोड़ी गई तब वह अन्य रिपोर्टरों के साथ हथियारबन्द पुलिस के दस्ते के काफी पीछे चला आया था। धुएं और भगदड़ में वहां से कुछ नज़र नहीं आता था।

धुआं कुछ छंटने पर उसने फिर पहले वाली जगह पर पहुंचने की कोशिश की। तभी पुलिस ने उसे रोक लिया। उसे बताया गया कि भीड़ बेकाबू हो गई है और पुलिस को गोली चलाने का हुक्म दे दिया गया है। पुलिस के दस्ते के ठीक आगे ज़िला मजिस्ट्रेट खड़ा था।

भीड़ ने आगे बढ़कर कुछ कपड़े और मनिहार की दूकानों में आग लगा दी थी और पुलिस पर तीन ओर से पत्थर और ईंटें फेंकी जा रही थीं। एक बड़ा-सा पत्थर उसके बिलकुल करीब आकर गिरा।

जब तक वह आगे जाकर ज़िला मजिस्ट्रेट से पूछताछ करे तब तक हथियारबन्द पुलिस ने गोली चला दी। पुलिस के गोली दागते ही सामने की भीड़ के पैर मुड़ गए—हालांकि गोलियां हवा में चलाई गई थीं। आगे के जत्थे ने पीछेवालों को धक्का देते हुए भागने की कोशिश की। मगर तब तक पीछे के लोग आक्रामक हो चुके थे। ऐन चौराहे पर सैकड़ों की संख्या में आकर ईंट और पत्थर गिर रहे थे। भीड़ ने पुलिस पर हल्ला बोल दिया था।

रिपोर्टरों ने एक दूकान की सीढ़ी पर जगह ले ली थी। यहां से सारा दृश्य बखूबी नज़र आता था। कुछ आत्मरक्षा में और कुछ प्रतिहिंसा में पुलिस ने बेतहाशा गोलियां चलाना शुरू कर दी थीं। जैसे-जैसे भीड़ बेतरतीब होती जाती और पीछे भागती वैसे-वैसे सिपाही आगे बढ़ते जाते। अब वे लगभग बन्दूकें लिए मार्च करने लगे थे।

अधिक-से-अधिक नज़दीक का दृश्य देखने के इरादे से वह पुलिस के लगभग पीछे-पीछे चल रहा था। अन्य रिपोर्टर अब भी दूकान पर खड़े हुए थे। उसका दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। एक अजब किस्म की उत्तेजना उसमें समा गई थी। उसकी इच्छा हुई कि वह पुलिस के ठीक सामने जाकर खड़ा हो जाए।

अब तक गोलियों से कोई हताहत नहीं हुआ था। मगर तीसरी बार फायर करते ही बहुत-से लोग ज़मीन पर गिरते नज़र आए। उसे लगा जैसे एक झपाटे में बिजली ने किसी घने वृक्ष को धराशायी कर दिया हो। फिर चौथी बार, पांचवीं बार और छठी बार। मिनटों में सारा-का-सारा काम तमाम हो गया।

जिसे जहां जगह मिली वह वहां छिप रहा था। बेतरतीब, घबराई हुई भीड़ अलग-अलग दिशाओं में भाग रही थी।

ज़रा-सी देर में सड़कें लाशों और घायलों से पट गईं। जहां दिलचस्प नारों का शोर था वहां केवल कराह सुनाई पड़ रही थीं। या फिर कवायद कर कोतवाली की तरफ वापस जाती हुई हथियारबन्द पुलिस के भारी-भरकम बूटों की आवाज़। उसका दिमाग काम नहीं कर रहा था और शरीर को जैसे लकवा मार गया था। वह जिस जगह खड़ा था वहीं खड़ा रहा। पुलिस के दूर चले जाने के बाद उसे लगा लाशें गिनने के लिए वह अकेला रह गया है। मेरी हैसियत एक पेशेवर गवाह से अधिक कुछ नहीं। उसने सोचा और क्षण-भर को उसे स्वयं से वितृष्णा हुई। मगर अपने मन पर काबू पाते हुए वह एक कागज़ के पन्ने पर—वह नोटबुक कभी नहीं रखता था—पेंसिल से नोट्स लेता हुआ हताहतों के करीब से गुज़रने लगा।

इसके पहले कि एंबुलेंस आए, वह घायलों और दम तोड़ रहे लोगों से उनका बयान ले लेना चाहता था। अगर वह उनमें से दो-एक के भी बयान

ले सकने में कामयाब हुआ तो उसकी स्टोरी फर्स्ट क्लास हो जाएगी। आम-तौर पर रिपोर्टर इतना जोखिम और दिलचस्पी नहीं लेते। उनका खयाल है कि घटना का केवल राजनैतिक पहलू महत्त्व रखता है—मरते हुए आदमी का बयान लेना रिपोर्टर का नहीं, पुलिस का काम है।

जगह-जगह बहते हुए खून से अपने को बचाता हुआ वह दूकानों की लम्बी कतार की ओर निकल आया था, जहां से हताहतों को उठाया जा रहा था।

एकदम नाली के किनारे पड़े हुए एक अधेड़ उम्र व्यक्ति के करीब जाकर वह रुक गया। उसने देखा कि वह बार-बार हाथों के बल उठने की कोशिश करता था और गिर पड़ता था। उसकी कमीज़ खून से रंग गई थी। शायद पेट में गोली लगी थी। उसने उसे सहारा देकर उठाया और खम्भे के सहारे टिका दिया। वह हांफ रहा था और रक्त का बहना जारी था। उसे लगा वह कुछ कहना चाह रहा है। उसने उससे पूछा, 'आप कुछ कहना चाह रहे हैं ?' अहमद को लगा कि उसने जवाब में उसे जिस दृष्टि से देखा उसमें कृतज्ञता और घृणा दोनों ही हैं। अहमद क्षण-भर को तिल-मिलाया। क्या वह मुझसे इसलिए नफरत कर रहा है कि मुझे गोली नहीं लगी, मैं बरकरार हूं। मगर वह अब भी उसे जिसे तरह देख रहा था उससे वह डर गया, उसे लगा वह उसके अन्दर उतर जाएगा। उसे जल्द ही कूच कर जाना चाहिए।

प्रकाश ने एक बार फिर अपने को बटोरकर उसका नाम पूछा। उसने पाया कि वह जवाब देने की कोशिश कर रहा है, मगर उसके मुंह से बोल नहीं फूट रहे हैं। उसका बायां हाथ उसके पेट पर है, जहां से खून बह रहा है और दायां हाथ छलनी होकर झूल गया है। उसने अपनी आंखें मूंद ली थीं। अब की बार प्रकाश ने उससे पूछा, आपको कुछ चाहिए ? प्रकाश ने देखा कि उसने अपनी आंखें खोल ली थीं और उसे देख रहा था। फिर उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

प्रकाश के पैर कांप रहे थे। उसने अपनी पेंसिल जेब में रख ली थी। उसका जी घबराने लगा था। फिर उसने देखा कि वह आदमी अपनी इच्छा-शक्ति इकट्ठी कर उसकी ओर देखता हुआ कुछ बुदबुदाने लगा था।

वह केवल एक ही शब्द कह पा रहा था, "बब्बू।"

"आपका नाम बब्बू है ?" प्रकाश ने बेवकूफ की तरह सवाल किया। उसे लगा उसके सवाल पर वह आदमी, जो मर रहा था, मुस्करा रहा है।

"बब्बू !" उसने फिर कहा। इस बार उसने अपना हाथ अपने पेट से हटा एक अंगुली से इशारा करने की कोशिश की। उसकी आंखों से आंसू लगातार बहने लगे थे।

प्रकाश समझ गया था। अबकी बार जब उसने 'बबुआ' कहा तब वह वहां खड़ा नहीं रह सका। अपने एक सहयोगी से सवाल किया कि 'हू वाज़ ही ?' जवाब दिए बिना वह सड़क के दूसरी ओर आ गया, जहां कुछ आमदरफ्त शुरू हो गई थी--लोग घायलों को सहारा देने लगे थे।

अचानक वह मुड़ा। उसे लगा उसे किसी ने पुकारा। वह तेज़ी से लौटकर उस दम तोड़ते हुए व्यक्ति के करीब आया जिसके विषय में पूछा गया था, 'हू वाज़ ही ?'

उसका सिर अब भी खम्भे से टिका हुआ था। वह उसके करीब बैठ गया। उस व्यक्ति ने अपनी आंखें खोलीं। शायद वह उसे पहचानने की कोशिश कर रहा था। फिर उसने प्रयत्न के साथ उसका हाथ पकड़ा। प्रकाश ने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया था। फिर उसकी पकड़ गहरी होने लगी। प्रकाश को लगा वह उसे अपनी ओर खींच रहा है। उसे डर-सा लगा। वह उसे कहां ले जाना चाहता है ? उसने अपनी कलाई छुड़ाने की कोशिश की, मगर उसने पाया, मरते हुए व्यक्ति की पकड़ और गहरी हो गई है। अगर ज़रा-सी चूक हुई तो वह उसके साथ एक अनन्त अंधकार में जा गिरेगा। उसने एक झटके के साथ अपनी कलाई छुड़ाई और उठ खड़ा हुआ।

वह आदमी मर चुका था। उसका सिर एक ओर लुढ़क चुका था और बायां हाथ पहले से बेजान दाएं हाथ की तरह निर्जीव झूल रहा था।

वह बदहवास भागता हुआ एंबुलेंस तक आया और उनसे कहा, "वहां एक आदमी मरा पड़ा है।" एंबुलेंसवालों ने एक बार उसे देखा मगर कोई जवाब नहीं दिया, चुपचाप अपने काम में लगे रहे।

उसने लालकिले के स्टैंड से अपना स्कूटर उठाया और दफ्तर की ओर

चल पड़ा। वह धीरे-धीरे स्कूटर चलाता हुआ आया—उसे लग रहा था वह नहीं, कोई और उसका स्कूटर चला रहा था।

दफ्तर पहुंचकर उसने अपने नोट्स निकाले और लिखने का उपक्रम किया। अपनी स्टोरी उसे तुरन्त फाइल करनी थी, ताकि डाक-संस्करण में जा सके। मगर अभी उसने पहला ही वाक्य लिखा था कि उसे लगा किसी ने उसकी कलाई पकड़ ली है। उसने दूसरा वाक्य लिखा और लगा कलाई पर यह पकड़ और गहरी हो गई है। उसने घबराकर कलम रख दी और कुर्सी पर पसर गया!

थोड़ी देर बाद उसने फिर प्रयत्न किया और फिर उसे लगा किसी ने उसकी कलाई पकड़ ली है और वह कुछ भी लिख सकने में असमर्थ है।

तीसरी बार प्रयत्न करने पर वह केवल आठ-दस पंक्तियां लिख सका था जिन्हें पढ़ने के बाद उसने अपनी रिपोर्ट फाड़कर रद्दी की टोकरी में फेंक दी थी। वह स्वयं नहीं समझ पा रहा था कि क्या ऐसा छूट गया है, जिसके कारण उसकी रिपोर्ट तमाम तथ्यों के बावजूद अवास्तविक लगती है।

उसकी ठंडी हो चुकी चाय दूकानदार उसके सामने से हटा ले गया था। शायद वह उसे बाहर जाने का इशारा कर रहा था। पूरी तरह अंधेरा हो चुका था। चौक में एकदम सन्नाटा था। अपना स्कूटर दूर तक ढकेलने के बाद उसने स्टार्ट किया और बत्ती जला दी। सड़क से गुज़रते हुए उसे लगा, सड़क उसका पीछा कर रही है।

दफ्तर पहुंचने पर उसने पाया, चीफ रिपोर्टर उसका इंतज़ार कर रहा था। वह उसकी डेस्क की तरफ न जाकर एक दूसरी खाली कुर्सी पर बैठ गया और एक पुर्ज़े पर लिखकर समाचार-सम्पादक को भिजवाया, उसकी तबीयत अच्छी नहीं है, एजेंसी रिपोर्ट छाप दी जाए।

चीफ रिपोर्टर की नज़र बचाता हुआ वह बाहर आया। दफ्तर से बाहर निकलते हुए उसे एक बार फिर स्वयं से वितृष्णा हुई। उसने अपनी जेब में पड़े हुए अखबार को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया और जब उसके टुकड़े ज़मीन पर बैठ गए तब वह उन्हें पैरों से कुचलने लगा—देर तक कुचलता रहा।

खेल का मैदान

"घास कुछ गीली ज़रूर है, मगर इतनी नहीं कि बैठा न जा सके।" नरम हरी घास पर लड़की के साथ-साथ चलते हुए लड़के ने गोया अपने-आप से कहा। वह लड़की का हाथ अपने हाथ में इस तरह लिये हुए चल रहा था जैसे कई साल से वे दोनों इसी तरह चले आ रहे हैं।

बेहतरीन चिकनी घास पर चलते-चलते लड़के ने जान-बूझकर फिसलने की कोशिश की और लड़की को लिये हुए जा गिरा।

अंधेरा करीब-करीब घिर चुका था और घास के उस मैदान में उस वक्त कोई नहीं था। केवल दो छोरों पर दो गोल-पोस्ट थे। गोल-पोस्ट के परे सड़क थी और सड़क के उस पार जेल की ऊंची दीवार जो दूर तक चली गई थी। जेल के घंटे ने अभी-अभी सात का गजरा बजाया था जिसकी अनुगूंज गुज़रती हुई दूर आबादी की तरफ चली गई थी।

लड़की लड़के की गोद में जा गिरी थी। कुछ देर उसने उठने की कोई कोशिश नहीं की जैसे यह सब अचानक हुआ और इसके बाद क्या हो इसका उसे पता नहीं। मगर फिर वह अलग हुई और अपने को संवारने में व्यस्त हो गई।

लड़का उसी तरह कुहनियों के बल पड़ा रहा। लड़की जब थिर गई तब उसने फिर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और उसकी मुलायम

अंगुलियों और गदराई हुई हथेली से खेलने लगा। लड़की उसके और नज़दीक खिसक गई।

लड़के ने लड़की का हाथ अपने खुले हुए सीने पर रख लिया और मसोसने लगा। लड़की ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। उसके हाथ को इस तरह मसोसते हुए उसे अच्छा लगा और कुछ देर वह इसी तरह अपने सुख में डूबता-उभरता रहा। फिर जब लड़की ने अपना हाथ खींचना चाहा तो वह एक झटके में जैसे किनारे आ गिरा। मगर तत्काल उसने हटते हुए हाथ को कुछ और मज़बूती से पकड़ लिया और फिर अपने मुंह की ओर ले जाता हुआ अपने गर्म ओठ उसकी अंगुलियों से छुलाने लगा। फिर उसने सारी-की-सारी अंगुलियां अपने ओठ पर रख लीं। एक बार उसने लड़की की ओर देखा, मगर अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। क्षण-भर रुककर उसने लड़की की एक अंगुली अपने मुंह में ले ली और चूसने-सा लगा। उसे इसमें मज़ा आ रहा था।

कुछ देर इसी तरह चूसते रहने के बाद उसने लड़की की अंगुली अपने दांतों के बीच लेकर काट ली। लड़की ने 'सी' करते हुए अपनी अंगुली खींची। तब उसने एक झटके के साथ उसका हाथ दूर फेंक दिया।

घास कुछ और नम ज़रूर हो गई थी मगर तब भी उमदा थी। सड़क पर से बड़ी देर बाद अभी गुज़रने के नाम पर एक ट्रक गुज़री थी, वह भी बुझी-बुझी-सी।

पास में कहीं उल्लू बोला और अगर वह न बोलता तब भी शाम उतनी ही मनहूस और डरावनी होती।

उल्लू की आवाज़ से वह ज़रूर डर गई होगी। उसने सोचा और चाहा कि उससे पूछे। मगर वह चुप मार गया। अगर उसने अंगुली इस तरह खींच न ली होती तो मैं खुद मुंह खोलता और पूछता और फिर उसे अपने बचपन का किस्सा बताता कि हम किस तरह स्कूल की इमारत के अन्दर छिपे हुए उल्लुओं पर ढेले मारा करते थे। मगर जाने दो।

वह उसी तरह पड़ा हुआ था। मगर इस बीच लड़की उसके और पास खिसक आई थी। उसकी साड़ी का छोर करीब-करीब उसके शरीर पर लोट रहा था और उसे बढ़िया गन्ध आ रही थी, तीखी, जो न जाने कहां से

आती है। वह इस नशे में बेसुध-सा पड़ा रहा और पास बैठी लड़की भी उसे एक भारी चीज़ प्रतीत हुई।

लड़की उस पर झुक गई थी और उसके वक्ष उसके सीने से सट गए थे। लड़का वैसे ही अनडुल जैसे उस वक्त कहीं और।

लड़के की देह बलिष्ठ थी और उसकी भुजाएं और मांसपेशियां लड़की को हमेशा अच्छी लगती थीं। वह उन्हें प्यार से निहारती थी। उसने उन्हीं भुजाओं पर हाथ फेरा और फिर कुछ और झुककर उसका माथा सहलाने लगी।

आश्वस्त पड़े हुए लड़के ने उसे पूरी तरह अपनी ओर खींच लिया और कुछ सोचता हुआ-सा आंखें बन्द किए रहा। लड़की ने अपना मुंह उसके सीने पर रख दिया था और उसके गरम ओठ उसके खुले हुए सीने पर सुस्त पड़े हुए थे।

लड़की ने उसके बालों पर अंगुलियां फिराईं, फिर गरदन पर। उसे कुछ गुदगुदी अनुभव हुई। वह हिला और हिलते हुए उसे लगा कोई बढ़िया चीज़ थी वह जिस पर सिर रखकर सो रहा था और अभी किसी ने वह उसके सिर के नीचे से खिसका ली और अब वह ज़मीन पर आ पड़ा है। उसने चिढ़कर लड़की को अपने से दूर ढकेल दिया।

उसे दिखाई पड़ा नहीं और उसने देखना चाहा भी नहीं कि समीप गिरकर लड़की क्या कर रही है?

अपनी बांहें सिर के नीचे रखकर उसने तकिया-सा बना लिया और खुली आंखों आसमान की ओर देखने लगा।

कुहरा था। घिरता हुआ। आहिस्ता-आहिस्ता नज़दीक आता हुआ। गोल-पोस्ट भी दिखाई पड़ नहीं रहा था और सड़क भी गायब थी जैसे उठकर कहीं और चली गई हो।

इस कुछ भी सुझाई न पड़ने वाली दुनिया में केवल लड़की की कलाई में बंधी घड़ी का रेडियम डायल चमक रहा था जिसके होने से उसे विश्वास था कि लड़की अब भी उसके पास है। डायल जब इधर-उधर होता तो वह अनुमान कर लेता कि वह हिल-डुल रही है।

शायद वह सुबक रही है। उसने उसे टटोलना चाहा। अपना हाथ

बढ़ाया और अन्दाज़े से उसके कपोल पर रखकर अंगुलियां फिराने की कोशिश की। वह छिटकी। तब वह उठा और सीने के ज़ोर से लेट गया उसके समीप। कुछ बढ़कर उसकी लोचदार गरदन अपनी बांह में ले ली और यह देखकर कि वह कोई विरोध नहीं कर रही है, केवल पड़ी हुई है, उस पर झुका और उसकी आंखों को चूमा जो गीली नहीं थीं। उसे कुछ अचरज भी हुआ और कुछ उस पर विश्वास भी।

अपने ओठ उसकी आंखों पर रखे हुए धीरे-धीरे उसने उसके ब्लाउज़ के बटन खोल डाले। जब सारे बटन खुल गए तब लड़की ने कातर-सी होकर कहा, "नहीं।"

वह ठिठका। फिर कुछ ऊपर उठते हुए पूछा, "तुम्हें डर लगता है?"

"नहीं।" लड़की ने अंधेरे में लगभग निर्वसन पड़े हुए उत्तर दिया।

"सच बोलो।" लड़के ने जैसे अपने पर अविश्वास करते हुए प्रश्न किया।

"सच।" इस बार लड़की कुछ ऊपर उठ आई और अपने ओठ उसके ओठों से सटा दिये।

लड़के ने अनुभव किया कि उसके मुंह से प्याज़ की गंध आ रही है। लड़की के मुंह से निकलकर बदबू जैसे उसके मुंह में समा गई। उसने अपनी गरदन घुमाई और मुंह दूसरी ओर कर लिया।

उसका एक गाल लड़की के कपोल से सट गया था। और सटे-ही-सटे उसे लगा उसकी दाढ़ी का बाल शायद लड़की के चिबुक में गड़ रहा है। सुबह उसने अच्छी तरह शेव भी नहीं किया था। उसने अपनी ठुड्डी लड़की के कंधे पर रख दी।

अंधेरे में घूरते हुए उसे लगा वह लड़की के शरीर से एक छिपकली की तरह चिपका हुआ है। और लड़की है भी दीवार की तरह चिकनी और ठंडी।

वह कुछ खिसका। फिर एकाएक उठकर बैठ गया।

रेडियम डायल अब भी उसी जगह चमक रहा था, अर्थात् लड़की हिली नहीं थी। वह इसी तरह पड़ी रहेगी, जब तक मैं उसे जगाऊंगा नहीं।

उसने अपनी कमीज़ के बटन बन्द किए और उठ खड़ा हुआ। उसके

उठने की आहट से डायल हिला और जब उसने कदम उठाने की कोशिश की तो उसने पाया कि लड़की ने उसकी पतलून का पायंचा पकड़ लिया है।

लड़की उठकर बैठ गई थी। वस्त्र की सरसराहट से उसने समझ लिया कि वह अपने कपड़े संवार रही है।

वह धीरे-धीरे पंजों के बल कुछ दूर चला गया जहां से वह तो उसकी घड़ी की चमक से उसकी जगह को पहचान सकता था, पर वह उसका अनुमान नहीं कर सकती थी।

जब वह काफी दूर निकल गया तो घड़ी का डायल भी अंधेरे में गुम हो गया। वह रुका और कुछ देर वहां ठिठका रहा। एकाएक उसे डर-सा लगा और धीरे-धीरे भय उसमें समाने लगा।

वह घबराया हुआ-सा उस ओर लपका जिधर उसे छोड़ आया था। पास पहुंचने पर रेडियम डायल चमका, तब उसने समझ लिया कि वह फिर लेट गई है और उसका इन्तज़ार कर रही है।

खुशी में वह झुका। इस बार मैं उस पर चुम्बनों की झड़ी लगा दूंगा।

मगर जब उसने टटोलना चाहा तो पाया कि वहां वह नहीं थी। केवल घड़ी घास पर पड़ी हुई चमक रही थी।

दुःख, परेशानी और गुस्से में वह उठा। एक बार उसकी इच्छा हुई वह उसे ढूंढ़ने की कोशिश करे, मगर फिर वह आगे बढ़ गया। घड़ी भी नहीं उठाई।

सड़क पर आकर उसने एक पत्थर उठाया और कसकर गोल-पोस्ट की दिशा में फेंका। मगर अंधेरे में फेंका हुआ पत्थर गोल-पोस्ट के बीच से गुज़रा या नहीं, यह जानने की परवाह उसने नहीं की।

कैद

रोज़ ही ऐसा होता था। मगर आज की शाम, उस समय, वहां कोई भी नहीं था। नदी थी जिसका पाट पहुंचते-पहुंचते चौड़ा हो गया था।

टहलता हुआ आकर वह पुल के बीचोबीच खड़ा हो गया था और ठीक सामने की ओर देख रहा था। पानी कुछ बहता और कुछ थिर दीखता था। चमक आंखों पर भी पड़ रही थी। इसलिए वह उस ओर पीठ दे उछलकर पुल पर बैठ गया। अंधेरा असल में इस तरफ था।

पुल की पीठ पर सवार हो चुकने के बाद उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई, मगर दोनों छोर सुनसान थे। एक तरफ मछुओं का घाट था, दूसरी तरफ सड़क ढलती और लुढ़कती हुई शहर को निकल गई थी। असंग बैठे हुए उसने शांति का अनुभव किया और एक क्षण को उसे लगा, इससे अच्छी जगह अब से पहले उसने कभी नहीं देखी।

इतमीनान से उसने अपना मुंह रूमाल से पोंछा और तब उसे खयाल आया उसकी जेब में कुछ मूंगफलियां हैं जो उसने इधर आते हुए इसी मौसम के लिए ली थीं। उसने सोचा था यहां बैठा-बैठा वह इन्हें चबायेगा और अपना समय मौसम से बिताएगा। जिन दिनों वह टूरिस्ट गाइड था, मूंगफलियां सैलानियों को यह कहकर खिलाया करता था कि यह इस देश का सबसे नायाब फल है। उस समय केवल कहा करता था, मगर अब, बेरोज़गारी के इन दिनों में महसूस करने लगा था।

मूंगफली के छिलके वह लापरवाही के साथ पीछे नदी में फेंकता जा रहा था, हालांकि कुछ छिलके, कुछ दाने उसके कोट पर, उसकी गोद में,

उसकी पतलून पर गिरते जा रहे थे। वह तल्लीन था और काफी देर तक इसी तरह कुछ भी न देखता रहता, अगर आहट न सुनाई पड़ती।

उसने देखा एक दूसरा टहलता हुआ आकर उसके करीब-करीब सामने बैठ गया था। उसी तरह उछलकर, हालांकि पहले रूमाल बिछाकर। और अब जमने की मुद्रा में है।

उसने लापरवाही से उसे देखा और फिर मूंगफलियां चबाने में मशगूल हो गया। जेब में अभी कुछ बची हुई थीं। जब ये न होंगी तब क्या होगा, इस पर विचार उसने किया नहीं था।

मगर दूसरी बार आंखें उठाकर उसने देखा तो पाया कि वह दूसरा गौर से उसे देख रहा है। उसने भी अपनी आंख उस पर से हटाई नहीं और उसे देखने लगा, कुछ इस तरह स्वांग करता हुआ (और कुछ सचमुच ही) जैसे वह उसे नहीं उसके पार देख रहा है। उस आदमी के शरीर पर था तो एक कोट और पतलून ही, मगर बढ़िया कपड़े का और वह उन्हें सतर्क लापरवाही के साथ पहने हुए था। उसकी टाई कोई बहुत कीमती तो नहीं मगर खूबसूरत थी। और उसके जूते नुकीले थे। ज़ाहिर है कि वह सलीके का आदमी था और अपने को इस तरह सजाना जानता था कि लोग उसकी ओर खिच भी जाएं और किसी को पता भी न चले कि उसने अपनी सजावट की है।

मगर होगा। इस तरह के आदमियों से वह बहुत गुज़रा है। उसने मूंगफली का आखिरी दाना मुंह में फेंका और मूंगफलियां खत्म होने के खयाल पर निश्चिन्त हुआ। उसकी दृष्टि जो सचमुच ही अब तक उस दूसरे के पार जा चुकी थी, आकर जब उस पर रुकी तो उसने पाया, वह हंस रहा था। उसे कुछ घबराहट-सी हुई। मगर उसने देखा, अब तक हंसी उसके मुंह से गई नहीं थी।

वह फौरन समझ गया, वह दूसरा उसे गंवार समझ रहा है। और उसे अहसास हुआ, उसे इस तरह मूंगफलियां खानी भी तो नहीं चाहिए थीं जैसे कई दिनों से उसने कुछ भी नहीं खाया हो। उसने उसी क्षण अपना मुंह फेर लिया और नदी के पश्चिमी घाट की ओर देखने लगा।

अभी अंधियारा नहीं हुआ था और दूसरे किनारे पर कई डोंगियां और नावें बंधी हुई थीं। वहां भी कोई नहीं था। केवल एक धीमर लड़का नंगे बदन पानी में कुछ दूर घुसकर मछलियां पकड़ने का उपक्रम कर रहा था। मगर लगता था मछलियां पकड़ में नहीं आ रही थीं। उसने उस हैरान लड़के के बारे में सोचने की कोशिश की, फिर उन रुकी हुई नावों के, फिर उन मल्लाहों के जो वहां नहीं थे और फिर उसने अपने कोट के भीतर कुछ

अड़चन महसूस की।

कुछ गरमी है। उसका हाथ उसकी टाई पर गया और उसने गांठ कुछ ढीली कर ली। फिर एकाएक झुंझलाकर मुड़ा और देखा वह दूसरा अभी भी उसे गौर से देख रहा था।

उसने कुछ क्रोध में अपनी आंख उसकी आंखों से मिलाने की कोशिश की, मगर अपने-आप ही उसकी आंखें नीचे गिर गईं।

वह कुछ देर इसी तरह रहा, फिर उसने अपनी जेब से एक पुस्तक निकाली और कहीं से उसका पन्ना खोल लिया। ठीक अपनी पीठ पर इकट्ठे उजाले में वह इबारतें साफ-साफ पढ़ सकता था।

छपे हुए अक्षरों पर धीरे-धीरे उसने दृष्टि दौड़ानी शुरू की, मगर जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता गया उसने महसूस किया वह जो कुछ पढ़ रहा है उसका कोई मतलब नहीं है।

ऐसा तो कभी नहीं हुआ। उसने एक बार अपनी बुद्धि पर ज़ोर दिया और पढ़े हुए पृष्ठ को दोबारा शुरू किया। और सचमुच ही इस बार वे शब्द, वे पंक्तियां, अर्थ बनकर उसके मन में उतरने लगे। उसे इसमें आनंद आया और वह पुस्तक में रमने लगा।

दो-एक पृष्ठ पढ़ जाने के बाद उसने अनुभव किया, वह पढ़ नहीं रहा है। बुदबुदा रहा है, जिसे कोई सुन रहा है।

उसकी दृष्टि पुस्तक से अपने-आप उठी और उस ओर गई जहां वह दूसरा बैठा हुआ था। असल में वह यह जानना चाहता था, वह अब भी यहीं है कि चला गया।

उसने देखा वह अब भी वहीं बैठा हुआ था। और उसे बैठा ही देख उसे झुंझलाहट भी हुई और अप्रत्याशित प्रसन्नता भी।

उस दूसरे ने भी एक पुस्तक निकाल ली थी और वह भी पढ़ रहा था। क्या वह सचमुच पढ़ रहा है या उसकी तरह ऊब रहा है? उसने भांपने की कोशिश की, मगर कुछ अन्दाज़ नहीं मिला।

उसने एक लम्बी जमुहाई ली और अपना मुंह फेर लिया।

अंधेरा होने में अब थोड़ा ही बचा है। उसने सोचा। फिर यह सब छिप जाएगा। और दूसरा? दूसरे के खयाल पर वह चौंका।

और उसने महसूस किया वह उसके ठीक पीछे आकर खड़ा हो गया है। वह उसकी सांस अपनी गर्दन पर महसूस कर रहा है। उसकी कनपटी की नसें तनने लगीं और वह अपने कपड़ों के अन्दर अपने को धीरे-धीरे नंगा महसूस करने लगा।

वह चीख पड़ेगा। उसने एकाएक मुड़कर देखा और पाया कि वह

दूसरा उसके पीछे नहीं, ठीक उसी जगह पहले की तरह बैठा हुआ है। अंतर केवल इतना है कि इस बार वह हंस रहा है।

वह मेरी बेवकूफी पर हंस रहा है। उसे शर्म-सी आई। और कुछ कातर होकर उसने उसे देखा। मगर दरअसल, ठीक से देखने पर उसने देखा, वह हंस भी नहीं रहा है। केवल, उसके चेहरे पर, एक व्यंग्य-भरी मुसकान है।

यह आदमी बड़ा घाघ है। यह इसी तरह लोगों को देखता है, झेंपता है, तौलता है और खुद कटघरे से बाहर खड़ा हुआ, सबकी व्यर्थता पर मुस्कराता है।

नीच ! उसने अपने ओठों को चबाते हुए उसे गाली दी। अपनी गाली पर उसे शर्म नहीं आई बल्कि उसे और भी गालियां देने की तबीयत हुई।

कमीना ! टुच्चा ! उसे अनुभव हुआ उसके अन्दर हज़ारों गालियां उमड़ रही हैं और अगर उसने अपने को रोका नहीं तो बरस पड़ेगा। उसकी मुट्ठियों में भी हरकत होने लगी। अबकी बार लगा कि अगर उसने अपने पर संयम नहीं किया तो वह उस पर टूट पड़ेगा। उसे ज़मीन पर गिरा देगा। उसकी मरम्मत कर डालेगा। उसकी धज्जियां उड़ा देगा।

उसकी भुजाओं में क्रोध उबल रहा था और उसके माथे से पसीने की धार बह रही थी। वह थोडी देर इसी तरह हांफता रहा। फिर धीरे-धीरे पैर की नसें ढीली पड़ने लगीं, कनपटी की फूली हुई शिराओं का तनाव ढलने लगा, छाती के पसीने पर हवा महसूस होने लगी और वह अंधेरे में डूबने लगा।

सचमुच अंधेरा हो गया था। मगर अब भी किनारों पर नावों की टोली नज़र आती थी। अच्छा होता यह अंधेरा बना रहता। मगर पुल पर और दोनों किनारों पर किनारे-किनारे निकल गई बिजली की बत्तिया अचानक जल उठीं और दूर-दूर पर घरों के कमरों की खिड़कियों से भी रोशनी छनने लगी।

"अच्छा होता यह अंधेरा बना रहता।" उसने सोचा। रोशनी हुई और अंधेरा पडा हुआ सारा नगर नंगा हो गया और यह पानी जहां-जहां तक उस पर रोशनी पड़ रही है, नंगा नज़र आता है।

उसका दिमाग थका हुआ था। मगर उठने की हिम्मत उसमें थी नहीं।

देर तक वहां बैठे रहने के बाद उसे शहर के छोटे-से ढाबे में जाकर पेट में कुछ ठूंसना होगा—हां, ठूंसना ही। वह विश्वास करने लगा कि वह जीता नहीं है, ढोता है, खाता नहीं है, ठूसता है। और अपने 'ढोने' और 'ठूंसने' की इस दहशत से कतराकर वह यहां आया था और उसने सोचा था

कि वह अपना समय शान्ति से गुज़ारेगा ।

मगर ! और उसका हाथ उसकी जेब में गया, सिगरेट के लिए ।

सिगरेट निकाल उसने ओठों पर लगा ली । मगर माचिस, उसे लगा उसने अभी इस देर में कहीं गिरा दी । हो सकता है नदी में या यहीं अपने परों के करीब ।

सिगरेट पीने की इच्छा बेचैनी में बदलकर उसके ओठ, जीभ और तालू को शुष्क करने लगी ।

ऐसा मेरे साथ अक्सर होता है । मैं कोई चीज़ कहीं भूल जाता हूं और फिर याद आने पर उसकी बेचैनी में छटपटाता हूं ।

अगर वह चला न गया तो उसी से मांगी जा सकती है । और अचानक उससे परिचय करने की इच्छा उसमें पैदा हुई ।

वह अपनी जगह पर से उठा । आगे बढ़ा । उसने देखा वह अब भी बैठा हुआ है ।

माचिस । वह कहना चाहता था मगर उसने देखा उस दूसरे के ओठों पर भी अनसुलगी सिगरेट कुलबुला रही थी । और शायद वह भी माचिस की तलाश में था ।

वह झिझका । शर्म में पीछे हटा । फिर अपनी जगह पर आकर बैठ गया ।

अचानक उसने सोचा, वह दूसरा दरअसल उसे चिढ़ा रहा है ।

शायद उसके ओठों पर सिगरेट भी नहीं है । उसे सन्देह हुआ । हो-न-हो उसने एक कागज़ लपेटकर झूठ-मूठ की सिगरेट बना ली है और उसका मखौल उड़ा रहा है ।

"तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हुए हो ?" उसकी इच्छा हुई वह उससे कहे । "हटते क्यों नहीं ? क्यों नहीं मुझे अकेले बैठने देते ?"

"लो मैं ही चला जाता हूं ।" वह बिना उसकी ओर देखे एक झटके के साथ उठा और चल पड़ा ।

कुछ दूर निकल जाने के बाद उसने शांति की सांस ली । मगर इसके पहले कि वह रुके, उसने अपने पीछे आहट सुनी । मुड़ा और उसने देखा वह दूसरा उसके पीछे-पीछे चला आ रहा है ।

"आप क्या चाहते हैं ?" इस बार उससे नहीं रहा गया और उसने लपककर उससे पूछा. "आप क्या चाहते हैं ?"

उसने देखा दूसरे ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

"आप जवाब क्यों नहीं देते ? साफ-साफ बतलाइए आप क्या चाहते हैं ? क्यों जब से मुझे परेशान कर रहे हैं ?"

उसे अब भी निरुत्तर देख उसका पुराना क्रोध फिर नये सिरे से उबलने लगा। और उसने महसूस किया अब सचमुच वह उस पर टूट पड़ेगा।

"कमीने, टुच्चे !" उसके अन्दर की गालियां उमड़कर बाहर आने लगीं और उसने पाया न केवल उसके मुंह से गालियां निकल रही हैं बल्कि आंखों से गरम-गरम आंसू बह रहे हैं।

गुस्से और आंसू में उसने अनुभव किया वह करीब-करीब अन्धा हो गया है और सब-कुछ अस्पष्ट और धुंधला नज़र आ रहा है।

उसने अपने को रोका, अपनी आस्तीन से अपनी आंखें पोंछीं और हैरानी के साथ देखा, वह दूसरा उसे अनसुना करता हुआ आगे निकल गया था।

उसका दिल एक बार ज़ोर से धड़का। क्या सचमुच ही वह चला गया ?

उस समय पुल पर कोई भी नहीं था। वह आहिस्ता से पुल पर बैठ गा।

कुछ देर इसी तरह बैठे रहने के बाद उसने उस ओर नज़र की, जिधर वह निकल गया था। उसने वह देखा। वह घाट की ओर जा रहा है।

जाने दो। उसने अपनी नज़र हटा ली।

पानी पर छप की आवाज़ से वह चौंका। उसने सोचा, किसी ने पत्थर फेंका है या कोई मछली कूदी है।

इस निस्तब्धता में यह 'छप' उसे बड़ी ही मनहूस लगी।

फिर एक दूसरी 'छप'। किसी ने शरारत की है।

मगर जब थोड़ी-थोड़ी देर में 'छप-छप' की आवाज़ आने लगी तो उसने समझ लिया कि हवा के झोंकों से हिल-हिलकर पानी पुल के पाये से टकरा रहा है और आवाज़ कर रहा है।

उसने जिज्ञासा से फिर उस दूसरे की दिशा में देखा और पाया, वह जाकर एक डोंगी पर बैठ गया था।

बेचारा ! उसके मन में करुणा उत्पन्न हुई। उसने फिज़ूल ही उसे हंकाल दिया। बल्कि इतनी सारी गालियां दे डालीं।

अपराधी की तरह वह उठा और बरबस घाट की ओर कदम बढ़ाये। मुझे उससे एक बार क्षमा मांगनी चाहिए।

घाट पर उतरकर उसने देखा, वह अब भी डोंगी पर उसी तरह शांत बैठा हुआ था। वह चुपचाप जाकर दूसरी डोंगी पर बैठ गया। आहट ज़रूर हुई, मगर वह दूसरा चौंका नहीं। वैसे ही रहा।

उसकी समझ में नहीं आया वह क्या करे? क्या उसे पुकारकर आवाज़ दे?

फिर अचानक वह दूसरी डोंगी पर लेट गया।

लेट जाओ। उसने अपने अन्दर जैसे एक तेज़ सीटी मारी और उसी तेज़ी के साथ वह भी लेट गया।

सीधी गरदन किए वह ऊपर आसमान की तरफ देखता रहा। उसकी हिम्मत नहीं हुई कि ज़रा गरदन मोड़कर देखे कि वह क्या कर रहा है।

बड़ी देर तक वह ऐसे ही पड़ा रहा। फिर पड़ोस की डोंगी हिली और उसके हिलने से डोंगियों का सारा बेड़ा हिला। उसकी अपनी डोंगी भी।

उसने देखा वह एक डोंगी से दूसरी डोंगी पर पांव रखता हुआ वापस जा रहा है। वह भी फुर्ती से उठा और खुद भी डोंगियों पर पैर रखता हुआ पानी के बाहर आने लगा।

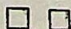
उसके जूते ज़रूर गीले हो गए थे। बाहर आकर उसने देखा, दूसरा उसके कुछ आगे निकल आया था और एक जगह पर जाकर खड़ा हो गया था।

वह मन-ही-मन हंसा। उसने सोचा, बेचारा सोच नहीं पा रहा है, किधर जाए। मैं बताता हूं। वह जानता था, उसके आगे बढ़ने पर वह ज़रूर उसके पीछे हो लेगा।

सिर झुकाए हुए वह उसकी बगल से निकल गया और चुपचाप दूर तक चला आया। काफी दूर निकल आने के बाद जब पीछे मुड़कर उसने देखा तो उसे परेशानी हुई। उसके पीछे कोई नहीं था।

वह किधर गया? उसे झुंझलाहट हुई। वह मुड़कर वहां वापस आया, जहां उसे छोड़ गया था, मगर जब वह वहां भी नज़र नहीं आया तो उसे सचमुच विस्मय हुआ।

अपने विस्मय और परेशानी में वह डोंगियों के झुरमुट की ओर बढ़ा, अपने जूते किनारे पर उतार दिए और उसे तलाश करने लगा।



श्रीकान्त वर्मा

कवि, कथाकार, समालोचक एवं संसद सदस्य श्रीकान्त वर्मा का जन्म 18 सितम्बर, 1939 को बिलासपुर, मध्यप्रदेश में हुआ।
1965 से 1977 तक श्री वर्मा ने 'दिनमान' में विशेष संवाददाता की हैसियत से काम किया। इसके पहले वह प्रख्यात साहित्यिक पत्रिका 'कृति' का दिल्ली से संपादन एवं प्रकाशन करते थे। 1976 में वह मध्यप्रदेश से राज्य सभा में निर्वाचित हुए। श्रीकान्त वर्मा की कृतियों के अनुवाद देश-विदेश की अनेक भाषाओं में हुए है और उन्हें अनेक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुए हैं। उनकी ख्याति एक ऐसे लेखक के रूप में है जिसने अपने युग के उत्थान-पतन, नैराश्य, द्वन्द्व, अवसाद तथा अन्धकार को एक जबर्दस्त आवेग के साथ पेश किया है।

उनकी कुछ अन्य कृतियां हैं : भटका मेघ, दिनारम्भ, मायादर्पण, जलसाघर मगध (कविता); झाड़ी, घर, दूसरे के पैर (कहानी); दूसरी बार (उपन्यास); ज़िरह (आलोचना); अपोलो क़ा रथ (यात्रा); बीसवीं शताब्दी के अंधेरे में (साक्षात्कार); प्रसंग (संकलन); फ़ैसले का दिन (अनुवाद)।